आज़ादी की लड़ाई

और

सुभाष बाबू

भारत की आज़ादी की लड़ाई का सिंहावलोकन

(१९२० से १९४६)

लेखक

डॉ. जगदीशचन्द्र जैन

एम्. ए., पीएच. डी.

: भूमिका लेखक :

सरदार सार्दूलसिंह कवीशर

मूल्य अढ़ाई रुपया

आज़ादी की लड़ाई

और

सुभाष बाबू

भारत की आज़ादी की लड़ाई का सिंहावलोकन

[१९२० से १९४६]

लेखक

डॉ. जगदीशचन्द्र जैन

एम. ए., पीएच. डी.

भूमिका लेखक

सरदार सार्दूलसिंह कवीशर

मूल्य अढ़ाई रुपया

प्रकाशक
परमानन्द पब्लिकेशन
सोनावाला बिल्डिंग,
५६, अपोलो स्ट्रीट
फोर्ट, बंबई

अक्टूबर १९४६

मुद्रक
चंदुलाल जेठालाल व्यास
स्वाश्रय मुद्रणालय
राणपुर (काठियावाड़)

१९४२ अगस्त आन्दोलन के

शहीदों को

प्रास्ताविक

सन् ४२ के आन्दोलन में वरली डिटेन्शन कैम्प में सुबह–शाम की दैनिक प्रार्थना के बाद जब देश के नेताओं की जय बोली जाती थी तो कॉलेज का एक विद्यार्थी सुभाषचन्द्र बोस की जय बोला करता था, लेकिन इस में कम लोग शामिल होते थे। कांग्रेसवादी और कांग्रेस सोशलिस्ट विचारधारा के लोग प्रायः इससे अलग रहते थे।

जेल के बाहर आने पर मुझे मालूम हुआ कि कम्युनिस्ट पार्टी का रुख भी सुभाषचन्द्र के प्रति कुछ दूसरा ही है।

गत २३ जनवरी को रामनारायण रुइया कॉलेज, बंबई में नेताजी–दिवस मनाने के लिये विद्यार्थियों की एक कमेटी बनाई गई थी, जिस में मुझे भी शामिल किया गया था। मैंने देखा कि विद्यार्थियों में अपूर्व उत्साह था। उस दिन तमाम शहर जयहिन्द के नारों से गूंज उठा और जनता की उमड़ती हुई भीड़ को रोकने के लिये पुलिस को गोलीबार करना पड़ा। दरअसल इस समय से मैंने गंभीर होकर नेताजी के विषय में सोचना शुरू किया।

मैंने इस पुस्तक में यथासंभव निष्पक्ष रह कर सुभाष के राजनैतिक दृष्टिकोण को रखने की चेष्टा की है। यदि इससे नवयुवक वर्ग को भारत की राजनीति समझने में कुछ भी सहायता मिली तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूँगा।

२८ शिवाजी पार्क
बंबई २८
१२–७–४६

जगदीशचन्द्र जैन

दो शब्द

हिन्दुस्तानी अखबारों में इस विषय में एक प्रकार का मतभेद चल रहा है कि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस अभी ज़िन्दा हैं या नहीं। मेरे ख़याल में दोनों ही तरफ़ की दलीलें बेकार हैं। नेताजी ज़िन्दा हैं और वे हमेशा ज़िन्दा रहेंगे। नेताजी के समान व्यक्ति अमर हैं, वे कभी मर नहीं सकते। हिन्दुस्तान में जो आज़ादी की तीव्र भावना पैदा हुई है, उसमें नेताजी जीवित दिखाई देते हैं, और जबतक हिन्दुस्तान स्वतंत्र और अजेय रहेगा तबतक नेताजी जीवित रहेंगे।

सदियों की अकर्मण्यता और संहारक विनाश के बाद सब से पहले महात्मा गांधीने हिन्दुस्तान को पहली बार जीवन-शक्ति प्रदान की। हिन्दुस्तान के लोग अपने मुल्क की आज़ादी पाने के लिये पिछले २० बरसों से ऐसी लड़ाई लड़ रहे हैं जैसी उन्होंने ब्रिटिश, मुसलमान या हिन्दू राज में पहले कभी नहीं लड़ी। पहले पहल गांधीजी ने ही हिन्दुस्तानियों को जीवन और आज़ादी का मार्ग बताया, और कहना न होगा कि उनके देशवासियों ने अभूतपूर्व उत्साह और तत्परता के साथ उनका अनुगमन किया।

लेकिन जब युद्ध का अवसर आया, मालूम होता था गांधीजी का तरीका पस्त हो गया है। जान पड़ता था कि गांधीजी और उनके इर्दगिर्द के साथी आत्म-विश्वास खो बैठे हैं, और साधारणतया प्रजा का अपने नेताओं में विश्वास नहीं रहा है। गांधीजी अहिंसात्मक रूप से ही आगे चल सकते थे, इसलिये जब भी मुल्क में सामूहिक सविनय अवज्ञा का आन्दोलन चला, इधर-उधर होने वाले हिंसात्मक कृत्यों के आघातों के कारण लोगों की अहिंसा-त्मक भावना में उनका विश्वास न रहा। इस प्रकार हम देखते हैं कि कांग्रेस का नेतृत्व साम्राज्यशाही के खिलाफ़ प्रहार करने की इच्छा और जन-आन्दोलन के कारण पैदा होने वाली हिंसा का भय, इन दोनों के बीच में चक्कर काटता रहा।

नेताजी ने कांग्रेस के नेतृत्व को निराशा की इस दलदल में से खींच कर बाहर लाने की कोशिश की, लेकिन वे नई दुनिया की रफ़्तार के मुताबिक़ नेताओं को न बदल सके। इस दिशा में अपने प्रयत्नों से निराश हो कर नया क्षेत्र और नया मार्ग इख़्तियार करने के लिये नेताजी भारत के बाहर गये। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनके अत्यंत विश्वास-पात्र साथियों को भी सफलता की कोई विशेष उम्मीद न थी। आशा अंधकारमय थी और मार्ग बहुत अनिश्चित था। जब नेताजी ने मेरे सामने अपनी योजना रक्खी, तो मुझे याद है मैंने कहा कि कहीं यह कोशिश जंगली हंस का पीछा करने के समान न साबित हो। लेकिन नेताजी अपने निश्चय पर अटल थे। जिस कटघरे के सींचकों ने उन्हें हिन्दुस्तान में निरुद्योगी बना रक्खा था, उसको देख कर वे एक सिंह के समान क्षुब्ध हो उठे थे। जब तमाम दुनिया द्रुतगति से बदल रही थी, और बहुत से मुल्क अपनी आज़ादी और ताक़त हासिल करने के लिये आपस में मर-कट रहे थे, नेताजी ने अकर्मण्य होकर चुपचाप बैठे रहने से इन्कार कर दिया।

कहने की आवश्यकता नहीं कि जो सफलता नेताजी को मिली वह अब किसी से छिपी नहीं है। यदि आज ब्रिटेन ने हिन्दुस्तान छोड़ने का निश्चय कर लिया है तो इसका कारण है बरमा और इम्फाल के मोरचे पर नेताजी की सफलता। यह ठीक है कि पूरब में रूस और अमरीका के दबाव के कारण जापानियों ने आज़ाद हिन्द फ़ौज को मदद देने से इन्कार कर दिया, जिससे लड़ाई की सामग्री न मिलने के कारण आख़िर में आज़ाद हिन्द फ़ौज को आत्मसमर्पण करना पड़ा। लेकिन इस संबंध में यह नहीं भूलना चाहिये कि नेताजी के सिपाहियों ने पूर्वीय मोरचे पर भारत की आज़ादी के हेतु सदा के लिये नैतिक विजय प्राप्त कर ली थी। बरमा में नेताजी का पीछे क़दम हटाना ऐसा ही था जैसा जनरल क्रूगर का दक्षिण अफ्रीका में अथवा डी वेलरा का आयर्लैंड में पीछे हटना। दोनों ने अपनी अग्रगति और हार में अपने अपने देश की आज़ादी प्राप्त की।

नेताजी चाहे जीवित हों या नहीं, लेकिन इतना निश्चय है कि वे हमेशा जॉन ऑफ़ आर्क, वाशिंगटन, गेरिबाल्डी तथा अन्य वीरात्माओं की तरह याद किये जायेंगे, जिन्होंने अपने देश की आज़ादी हासिल करने के लिये सब कुछ न्योछावर कर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि ब्रिटेन की साम्राज्यशाही के गढ़ पर नेताजी के जबर्दस्त आक्रमण के बाद भारत में विदेशी शासन सदा के लिये समाप्त हो चुका। ब्रिटेन के लोग इस देश में अपना सब प्रभाव खो चुके हैं, और उनके सन्मित्रों ने भी अब उनका साथ छोड़ दिया है। आज नेताजी की आज़ाद हिन्द फ़ौज की तरह, हिन्दुस्तानी पुलिस, हिन्दुस्तानी सेना और हिन्दुस्तान के राजकुमार भी ब्रिटेन के विरुद्ध हो गये हैं। इसका एकमात्र कारण है नेताजी का जीवन और उनके कार्य जो हिन्दुस्तानियों के दिलों में कूट कूट भर गये हैं।

इस पुस्तक में उस महान् पुरुष के मास्तिष्क की एक झांकी मिलेगी जो भारत की आज़ादी की लड़ाई में हमेशा इन्क़लाबी रहा है और जिसने भारत में नये इन्क़लाब को जन्म दिया है। ताज्जुब नहीं कि गांधीजी जैसे व्यक्ति ने भी नेताजी की महान् सफलता पर आश्चर्य प्रकट किया है। नेताजी का जीवन और उनके कृत्य हमारे अन्दर स्वार्थ-त्याग और प्रचण्ड देशभक्ति की भावना का संचार करते हैं, जिससे हमें उनकी सफलता के रहस्य का पता लगता है। जिस फ़व्वारे की बदौलत गुलाम लोग आज़ादी के सिपाही, तथा सर्वसाधारण स्त्री-पुरुष सिपहसालार और बहादुर बन गये, उस फ़व्वारे के नीचे बैठ कर जो उसका आनन्द लेना चाहें ऐसे प्रत्येक भारतवासी से इस छोटी-सी पुस्तक को पढ़ने का मैं अनुरोध करता हूँ। नेताजी की जय। जयहिन्द।

लाहौर
२६ सितंबर, १९४६

सार्दूलसिंह कवाशर

विषय-सूचि

[१]

ऐतिहासिक भूमिका

जब अंग्रेज़ हिन्दुस्तान में नहीं आये थे

ईसवी सन् के लगभग ३००० वर्ष पहले की बात है कि आर्यों ने हिन्दुस्तान में क़दम बढ़ाया, और यहाँ के मूल निवासी द्रविड लोगों को जीतकर अपने में मिला लिया। ये आर्य और ईरानी लोग एक ही वंश के थे तथा ये फ़ारसी, ग्रीक, लैटिन, ट्यूटानिक, केल्टिक और स्लेवोनिक भाषायें बोलते थे। धीरे-धीरे आर्य समस्त हिन्दुस्तान में फैल गये तथा वे द्रविड और भारतकी अन्य आदिम जातियों के साथ घुल-मिल गये। क्रमशः सामन्तशाही और राजतंत्र का जन्म हुआ, व्यापार तथा कृषि में उन्नति होने से श्रम-विभाजन बढ़ा, नगरों का जन्म हुआ, दस्तकारी में तरक़्क़ी हुई, तथा ब्राह्मण और क्षत्रियों का एक अलग वर्ग बन गया।

उसके बाद ईसा के पूर्व चौथी शताब्दि में मौर्यकाल आया, जिसमें भारत उन्नति के शिखर पर पहुँच गया। इस समय सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य ने छोटे-छोटे राज्यों को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया, राज्यके

विभिन्न विभागों के लिये भिन्न भिन्न अधिकारी नियुक्त किये गये, तथा शिक्षा, खेतों की सिंचाई, व्यापार और उद्योग-धंधों में काफ़ी उन्नति हुई। इस समय भारत में गणतंत्र राज्य की स्थापना हो चुकी थी। तत्पश्चात् अशोक का जन्म हुआ जिसने अपनी उदारता और परोपकारिता के कारण अपनी प्रजाका मन मोह लिया, और अपने राज्य में सदाचार की उन्नति के लिये पत्थरों पर शिलालेख खुदवाये। अशोक का राज्य बहुत दूर दूर तक फैला हुआ था।

इसके बाद हम ईसा की चौथी शताब्दि में गुप्तकाल में पदार्पण करते हैं जब कि भारत एक होकर फिर से चमक उठा। इस समय जो चीनी यात्री इस देश में पर्यटन के लिये आये, उन्होंने भारत की सुख-समृद्धि, गुणगरिमा, तथा विज्ञान और कला-कौशल की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। महान् कवि कालिदासका जन्म इसी कालमें हुआ था।

जब हम ११-१२ वीं शताब्दि में आते हैं तो हमें मालूम होता है कि धन की लोलुपता से तुर्क, अरब और अफ़ग़ान लोगों ने हिन्दुस्तान के समृद्धिशाली नगरों पर आक्रमण किया, और आखिर में सन् १२०६ में दिल्ली में मुसलमानों की सल्तनत क़ायम हो गई। धीरे धीरे तमाम उत्तर हिन्दुस्तान, गुजरात, बंगाल और दक्षिण में मुसलमानों का राज्य हो गया। अरबी, फ़ारसी और उर्दू भाषाओं की यहाँ तरक्क़ी होने लगी तथा इसलाम मज़हब बढ़ने लगा। लेकिन हिन्दू और मुसलमानों के इत्तफ़ाक में कोई फ़र्क़ न आया। धीरे-धीरे दोनों में विवाह शादियाँ तक हुई, अकबर तथा अन्य मुग़ल बादशाहों के ज़माने में यह संबंध बढ़ा, और इस समय हिन्दुस्तान में कला, संगीत, चित्रकारी, कविता, शिल्प आदि की विशेष उन्नति हुई। अकबर ने दीने-इलाही नाम का एक धर्म भी चलाया था, जिसका हिन्दू-मुसलमान कोई भी पालन कर सकता था। सन् १७०७ में औरंगज़ेब के मरने से मुग़ल साम्राज्य का अन्त हो गया और तत्पश्चात्

शिवाजी (१६२७–८०) के झंडे के नीचे मराठों, और महाराजा रणजीतसिंह (१७८०–१८३९) के झंडे के नीचे सिक्खों का संगठन हुआ। सन् १७७१ में पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठे हार गये, और सन् १८१८ में उन्हें अंग्रेज़ों ने आख़िरी बार शिकस्त दी। इसी प्रकार महाराजा रणजीतसिंह के मर जाने पर अंग्रेज़ों ने सिक्खों को हरा दिया। उसके बाद यहाँ पोर्तुगीज़, डच, फ्रांसीसी तथा अंग्रेज़ों ने जड़ जमानी चाही। आख़िर में फ्रांसीसी और अंग्रेज़ों की लड़ाई हुई जिसमें विजयलक्ष्मी अंग्रेज़ों के हाथ आई, और वे यहाँ हमेशा के मेहमान बन गये।

अंग्रेज़ों के आने के बाद

हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ों का पदार्पण सर्वप्रथम ईस्ट इंडिया कम्पनी के रूप में हुआ। इस कम्पनी ने १७ वीं शताब्दि के आरंभ में हिन्दुस्तान में अपनी तिजारत शुरू की थी। कम्पनी को ब्रिटिश पार्लियामेंट की तरफ़ से एक सनद (चार्टर) दी जाती थी जिससे उसे हिन्दुस्तान में तिजारत आदि के अधिकार मिलते थे।

धीरे-धीरे कम्पनी ने हिन्दुस्तान के कुछ प्रदेशों पर अधिकार कर लिया, और कम्पनी तथा हिन्दुस्तान के शासकों में युद्ध होने लगे। सन् १७६५ में दिल्ली के नामधारी सम्राट् शाहआलम ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी दे दी जिससे इन प्रान्तों से वसूल होने वाला कर कम्पनी के हाथों में पहुँचने लगा।

क्रमशः कम्पनी के अधिकारी अपनी चालाकियों से अपने इलाक़ों की सीमायें बढ़ाते हुए इस देश की अटूट धन-सम्पत्ति से अपनी जेबें भरने लगे। लेकिन ये करतूतें बहुत समय तक छिपी न रहीं। सन् १७७३ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने कम्पनी की नीति पर अंकुश लगा दिया, और साथ ही

बंगाल, बंबई और मद्रास को गवर्नर–जनरल के अधिकार में दे दिया गया। लेकिन गवर्नर–जनरल वारन हेस्टिंग्स के कारबार से लोगों में और भी असंतोष बढ़ा, जिससे सन् १७७४ में एक दूसरा क़ानून पास किया गया जिसके द्वारा संचालक सभा (कोर्ट ऑफ़ डाइरेक्टर्स) के ऊपर नियामक मंडल (बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल) की नियुक्ति की गई।

इसके बाद सन् १८३३ में सनद जारी करते समय कम्पनी को हिन्दुस्तान पर शासन करने की सत्ता सौंप दी गई, और अब ब्रिटिश ताज की ओर से हिन्दुस्तान पर कम्पनी हुकूमत करने लगी। सन् १८३३ और १८५३ के दरम्यान कम्पनी ने पंजाब और सिंध जीत लिये, तथा लॉर्ड डलहौज़ी की नीति से कम्पनी के इलाके में काफ़ी वृद्धि हो गई। इस समय ब्रिटिश पार्लियामेंट ने कम्पनी के ऊपर और भी अंकुश लगा दिये, और बंगाल को एक अलग सूबा बना दिया। लेकिन कम्पनी के अत्याचारों में इससे कोई कमी न हुई। लॉर्ड डलहौज़ी ने कई लावारिस राजाओं की रियासतें ज़ब्त कर लीं और अवध की रियासत को ब्रिटिश भारत में मिला लिया। प्रजा में आर्थिक शोषण बढ़ने से सर्वत्र कंगाली फैलने लगी। एक अंग्रेज़ ने इस समय का वर्णन करते हुए लिखा है—

"कम्पनी के शासन–काल में भयंकर अशांति और बेईमानी बढ़ रही है, तथा प्रजा ग़रीबी और नाना विपत्तियों से संत्रस्त है, अतएव शासन का भार खुद सरकार को अपने हाथ में ले लेना चाहिये।"

लेकिन इस का कोई असर न हुआ, और १८५७ में हिन्दुस्तान में सशस्त्र–क्रांति का जन्म हुआ। कुछ लोगों ने इस ग़दर या बग़ावत का नाम दिया है, लेकिन वास्तवमें यह हिन्दुस्तानियों की आज़ादी का प्रथम संग्राम था जिसमें हिन्दू और मुसलमानों ने कंधे से कंधा मिलाकर अपना खून बहाया था।

आज़ादी हासिल करने की यह ज़बर्दस्त कोशिश जब कामयाब न हुई तो शासकों ने उसे सदा के लिये कुचल देने के लिये समस्त देश को निःशस्त्र कर दिया। बस अगले ही वर्ष कम्पनी का कारबार सब बन्द कर दिया गया और हिन्दुस्तान का शासन सीधा ब्रिटिश ताज के नीचे पहुँच गया।

ध्यान रखने की बात है कि भारतवर्ष पहले भी शासित हुआ था लेकिन उन लोगों के द्वारा जो हिन्दुस्तान को अपना वतन समझते थे, और यहाँ के जीवन का एक अंग बन गये थे। इससे पहले भारतवर्ष ने अपनी स्वाधीनता कभी नहीं खोई थी। उसकी राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था का सूत्र कभी उसकी भूमि के बाहर नहीं गया था तथा उस के शासक कभी ऐसे लोग नहीं बने थे जो जन्म और गुणों से विदेशी हों।

कांग्रेस का जन्म

भारत का शासन-सूत्र पार्लियामेंट के हाथ में चले जाने पर, देश में विश्वास और शान्ति का वातावरण पैदा करने के लिये महारानी विक्टोरिया द्वारा घोषणा कराई गई, परन्तु अंग्रेज़ों की नीति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इंडियन नेशनल कांग्रेस (राष्ट्रीय महासभा) के जन्मदाता मिस्टर ह्यूम ने उस समय को परिस्थिति का दिग्दर्शन करते हुए लिखा है—

"उस समय देशमें अकालों का दौर-दौरा था और हज़ारों आदमी काल के गाल में जा रहे थे, किसान अत्यन्त पीड़ित थे, पुलिस बहुत रिश्वतख़ोर थी और प्रजा पर ज़्यादतियां करती थी, तथा लिखने और बोलने की आज़ादी छीन ली गई थी। प्रजा में राजनैतिक असंतोष बढ़ता देख अधिकारियों को भय हो रहा था कि फिर कहीं बलवा न हो जाय।"

ऐसी हालत में देशकी बढ़ती हुई ताक़त को दबाने के लिये इंडियन नैशनल कांग्रेस की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य था ब्रिटिश राज की छत्रछाया में रहते हुए वैधानिक उपायों से स्व-शासन के अधिकार प्राप्त करना।

बंग-भंग का आन्दोलन

कांग्रेस की स्थापना होने पर देश में जागृति के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे, यद्यपि सरकार की नीति में कोई फ़र्क नहीं पड़ा था। बंगाल और महाराष्ट्र के हिन्दुओं में यह राष्ट्रीय नव-जागरण विशेष रूप से दृष्टिगोचर हुआ। इस समय सन् १९०५ में भारत के वाइसराय लॉर्ड कर्ज़न ने बंगाल को दो हिस्सों में बाँट दिया। अबतक इस प्रान्त में राष्ट्रवादी हिन्दुओं की संख्या अधिक थी, लेकिन अब पूर्वीय बंगाल और आसाम में मुसलमानों की संख्या अधिक हो गई। सरकारी बयानों में कहा गया कि शासन की सुविधा के लिये यह सब किया जा रहा है, लेकिन वास्तव में बंगाल के नव-जागरण को ख़तम करने की ये चालें थीं।

बंगाल भर में सरकार की इस दमननीति का एक स्वर से विरोध किया गया, और १६ अक्टूबर को सारे हिन्दुस्तान में बंग-भंग दिवस मनाया गया जब कि बड़े ज़ोर-शोर से विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया गया। सरकार ने इस आन्दोलन को दबाने के लिये जगह जगह गिरफ़्तारियाँ कीं, जुलूस और सभाओं पर प्रतिबंध लगा दिये, और विद्यार्थियों को राजनीति में भाग लेने की सख़्त मनाई कर दी गई। लेकिन बलपूर्वक किसी देश की बढ़ती हुई जागृति को नहीं दबाया जा सकता। परिणाम यह हुआ सन् १९०७ अक्टूबर में हिन्दुस्तान में सब से पहला बम का धड़ाका हुआ जिस के द्वारा एक अंग्रेज़ का डिब्बा उड़ाने का प्रयत्न किया गया।

इसी समय 'युगान्तर' और 'नवशक्ति' जैसे क्रांतिकारी अख़बारों का बंगाल में जन्म हुआ। उधर कांग्रेस में राइट (नरम) और लेफ़्ट (गरम) नामके दो दल हो गये थे। १९०७ में सूरत में जो कांग्रेस की बैठक हुई उसमें गरम दल वाले हार गये, और कांग्रेसकी बागडोर नरम दल के हाथ में पहुँच गई। इसी समय उग्रवादी लोकमान्य तिलक को एक लेख लिखने के कारण राजद्रोहके अपराध में

छह वर्ष के लिये निर्वासित कर मण्डला (बरमा) जेल में भेज दिया। अरविन्द घोष ने इस समय राजनीति छोड़कर संन्यास ले लिया।

इसके बाद सन् १९०९ में 'मॉर्ले-मिन्टो सुधार' आये, और भारतीय कौंसिलों के सुधार की योजना पेश की गई। इस समय मुसलमानों को पृथक्-निर्वाचन का अधिकार मिला, और एक भारतीय को वाइसराय की कौंसिल का सर्वप्रथम सदस्य बनाया गया। सन् १९११ में सम्राट् जॉर्ज पंचम राज्याभिषेक के लिये हिन्दुस्तान बुलाये गये, और उनके द्वारा घोषणा कराकर बंगाल के दोनों भागों को एक कर दिया गया। इससे लोगों की कटुता कुछ कम हो गई।

योरोपीय महायुद्ध और भारतीयों की सेवाका पुरस्कार

सन् १९१४ में योरोप में महायुद्ध छिड़ गया। इस समय भारतीय क्रांतिकारियों का दल इस परिस्थिति से लाभ उठाकर अपने देश को स्वतंत्र करना चाहता था, लेकिन अन्य लोगों का सहयोग न मिलने से कुछ न किया जा सका। इस मौक़े पर स्वराज्य की मांग पेश करते हुए कांग्रेस ने प्रस्ताव पास किया कि हिन्दुस्तानियों ने महायुद्ध में अंग्रेज़ों का साथ देकर अपनी राजभक्ति का परिचय दिया है, अतएव हिन्दुस्तान को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन का अधिकार मिलना चाहिये। लेकिन अंग्रेज कुछ स्वराज्य देने तो यहाँ आये नहीं थे! इस समय लोकमान्य तिलक भी लंबी सज़ा काटने के बाद हिन्दुस्तान लौट कर आ गये थे और वे राष्ट्रीय दलका फिर से संगठन कर होमरूल का आन्दोलन चलाना चाहते थे।

सन् १९१६ में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में नरम और गरम दोनों दल फिर एक साथ एक मंच पर आये। इस मौके पर कांग्रेस और मुसलिम लीग दोनों की एक सम्मिलित कमेटी बनाई गई, और स्वराज की

मांग पेश की गई। इस समय गांधीजीने भारत की राजनीति में पदार्पण किया, जो दक्षिण आफ्रीका में सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह करके विजयी होकर लौटे थे। इसी समय सन् १९१७ में मॉडरेटों ने कांग्रेस से अलग होकर ऑल इन्डिया लिबरल फेडरेशन की स्थापना की।

तत्पश्चात् २० अगस्त १९१७ के दिन भारत सरकार के मंत्री माण्टेगू ने निम्न घोषणा की–

"ब्रिटिश सरकार चाहती है कि भारतशासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों का सम्पर्क उत्तरोत्तर बढ़े, और धीरे-धीरे ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन प्रणाली भारत में क़ायम की जाय"।

इस घोषणा को व्यवहार्य रूप देने के लिये माण्टेगू ने भारत के वाइसराय लॉर्ड चेम्सफोर्ड के साथ हिन्दुस्तान में आकर एक योजना पेश की जो माण्टेगू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के नाम से कही जाती है। आगे चलकर यह योजना सन् १९१९ के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इन्डिया एक्ट के रूप में उपस्थित की गई, जिसको कांग्रेस ने अस्वीकार कर दिया।

इस प्रकार एक ओर स्वराज देने की बात हो रही थी। दूसरी ओर नौकरशाही ने दमन-चक्र चालू कर दिया था।

महायुद्ध में भारतीयों की सेवा के बदले हत्याकांड और षड्यंत्रों की आड़ में सरकार ने शिकार खेलना शुरू कर दिया था। जनता का उग्र विरोध होने पर भी सरकार ने एक नया क़ानून पास कर दिया था जिसके द्वारा राजनैतिक क़ैदियों पर बिना मुक़दमा चलाये उन्हें अनिश्चित समय के लिये जेलमें रक्खा जा सकता था। वस्तुतः यही पारितोषिक हिन्दुस्तानियों को रौलट बिल के रूप में दिया गया था। गांधीजीने वाइसराय से प्रार्थना की कि वे कृपाकर इस बिल को क़ानून न बनने दें, लेकिन ऐसी मिन्नतों से क्या होने जाने वाला था?

आखिर इस बिल का विरोध करने के लिये गांधीजीने देशवासियों से जोरदार अपील की और कहा कि यदि यह बिल पास हुआ तो लोगों को सत्याग्रह करना चाहिये। ६ अप्रैल १९१९ के दिन देशभरमें हड़ताल मनाने का निश्चय किया गया। इस आन्दोलन में हिन्दू और मुसलमान दोनों साथ थे, जिसका तात्कालिक कारण यह था कि युद्ध के पश्चात् टर्की की अवस्था अस्तव्यस्त हो गई थी, जिसमें हिन्दुस्तान के मुसलमानों ने सरकार के विरुद्ध यहाँ खिलाफ़त का आन्दोलन चलाया था।

जलियानवाला बाग़ का हत्याकांड

गांधीजी की उक्त घोषणा का असर पंजाब में भी हुआ, जो विदेशी उद्योग-धंधे और व्यापारिक आक्रमण का स्थान बना हुआ था। लेकिन पंजाब का निरंकुश शासक सर माइकेल ओडायर इस पर तुला था कि यह आन्दोलन पंजाब में प्रवेश न कर सके। बस मौक़ा पाकर अधिकारियों ने जनता पर गोली चला दी। उत्तेजित भीड़ ने बैंक, रेलवे के गोदाम आदि पर धावा बोल दिया। उधर गुजरात और कलकत्ते में उपद्रव हो गये जिसके फलस्वरूप गांधीजी को अपना सत्याग्रह स्थगित करना पड़ा। अमृतसर की हालत खराब होती जा रही थी। यहाँ जनरल डायरने जलियानवाला बाग में मासूम औरतों और बच्चों पर गोली चलाकर चन्द मिनिटों के अन्दर चार सौ को मौत के घाट उतार दिया, और हज़ारों को घायल कर दिया। स्वयं डायर के वक्तव्य के अनुसार १६०० बार गोलियाँ चलाई गईं, अधिक इसलिये नहीं कि कारतूस नहीं रही थीं! साथ ही अमृतसर वासियों को दिल दहलाने वाली बड़ी-बड़ी शर्मनाक सज़ायें भुगतनी पड़ीं। मसलन उन्हें पेट के बल रेंगकर चलना पड़ता था, नंगा कर के उन्हें बेंतों से पीटा जाता था, लोगों की साइकिलें और बैलगाड़ियाँ सब छीन ली गई थीं, बाहर जाने के लिये रेल के

टिकट मिलना बन्द हो गया था, इत्यादि। उधर जनरल डायर को पुरस्कार में रुपयों की थैलियाँ भेंट दी जा रही थीं।

इन सब घटनाओं ने गांधीजी के दिल पर बहुत असर किया। उन्होंने स्वीकार किया कि उनसे हिमालय के समान बड़ी भारी भूल हो गई है, अतएव एक ओर तो उन्होंने सत्याग्रह स्थगित कर दिया, और दूसरी ओर शांति स्थापित करने के लिये वे हर प्रकार से प्रयत्न करने लगे। पंजाब हत्याकांड की जाँच करने के लिये सरकार की ओरसे हन्टर कमेटी नियुक्त की गई, परन्तु कांग्रेस ने उसका बहिष्कार किया और ख़ुद अपनी कमेटी बैठाई।

दिसंबर सन् १९१९ में अमृतसर में कांग्रेस की बैठक हुई जिसमें गांधीजी ने सरकार से सहयोग करने की नीति का समर्थन किया, परन्तु बाबू चितरंजनदास ने इसका विरोध किया।

गांधी-युग का आरंभ

इसके बाद सितंबर १९२० में कलकत्ते में कांग्रेस का नये सिर से संगटन करने की चर्चा हुई, और नये विधान के अनुसार सुधार और चुनाव के संबंध में विचार किया गया। गांधीजी ने असहयोग का प्रस्ताव पेश किया जो बहुत वाद-विवाद के बाद पास हुआ। इसके पश्चात् कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में कांग्रस को सुसंगठित बनाते हुए सरकारी कौंसिल, अदालत, शिक्षण-संस्थायें तथा विदेशी माल के बहिष्कार करने का प्रस्ताव पास किया गया, और साथ ही साथ हाथ की कताई, हाथ की बुनाई आदि गृह-उद्योगों और अस्पृश्यता-निवारण के ऊपर ज़ोर दिया गया। इस समय से कांग्रेस का ध्येय "शान्तिमय व उचित उपायों से स्वराज प्राप्त करना" घोषित किया गया। यह गांधी-युग का श्रीगणेश था।

[२]

असहयोग–आन्दोलन (१९२१)

देश में अपूर्व उत्साह

असहयोग आन्दोलन की तैयारियाँ होने लगीं। देशबंधु चितरंजनदास, पंडित मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय, पटेलबंधु, बा. राजेन्द्रप्रसाद, राजगोपालाचार्य, सत्यमूर्ति, अलीभाई मौलाना अबुल क़लाम आज़ाद, डॉ. अन्सारी, हकीम अजमल खां आदि देश के बड़े–बड़े प्रतिष्ठित औ' मान्य व्यक्ति आन्दोलन में आकर शामिल हुए। कोर्ट–कचहरियों के स्थान पर पंचायतें क़ायम हो गईं, विदेशी वस्त्रों का स्थान खादीने ले लिया, घर–घर चर्खे चलने लगे और हजारों लोग कातने और बुनने के काम में जुट गये, सरकारी स्कूल–कालेजों के स्थान पर राष्ट्रीय विद्यालय और आश्रम खुल गये, अंग्रेज़ी की जगह हिन्दुस्तानी का प्रयोग होने लगा, तथा शराब–बन्दी हिन्दू–मुसलिम ऐक्य और अस्पृश्यता–निवारण के आन्दोलन शुरू हो गये। लोग सरकारी पदवियाँ लौटाने लगे और बड़ी–बड़ी नौकरियों को छोड़कर देश के काम में जुट गये। देश में चारों ओर आशा और उत्साह का वातावरण छा गया।

सुभाष बाबू का राजनीति में प्रवेश

सुभाषचन्द्र बोस लंदन में इंडियन सिविल सर्विस परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त कर चुके थे। भारतीय आन्दोलन के समाचार पढ़कर उनके दिल में उथल-पुथल मच गई और वे लन्दन का ऐश्वर्य छोड़ अपनी नौकरी को लात मार कर मई १९२१ में विलायत से हिन्दुस्तान के लिये रवाना हो गये।

सुभाष के जीवन में उन्माद था, हृदय में उत्साह था, मन आशा की हिलोरें ले रहा था, और आँखों में आत्मोत्सर्ग का तेज देदीप्यमान था। विदेशी वेश-भूषा से सुसज्जित यह युवक १६ जौलाई को बंबई पहुंच कर देश के महान् नेता महात्मा गांधी से मिला। गांधीजीने वादा किया था कि वे एक वर्ष के अन्दर देश को स्वराज दिलायेंगे और वह भी विना रक्तपात के शांतिमय उपायों से असहयोग और सत्याग्रह द्वारा। सुभाष उस योजना को जानने के बड़े उत्सुक थे जिसके द्वारा हिन्दुस्तान चिरकाल से खोई हुई अपनी आज़ादी को फिर से शीघ्र प्राप्त करने जा रहा था। एक घंटे तक विचार-विनिमय हुआ। अपनी 'इन्डियन स्ट्रगल' नामक पुस्तक में सुभाष ने लिखा है—

"मैंने निष्पक्ष चित्त से गांधीजी को ठीक ठीक समझने की कोशिश की, लेकिन मुझे संतोष न हुआ। योजना की अस्पष्टता मुझे खटकने लगी और मैंने सोचा कि हो न हो या तो स्वयं गांधीजी को यह योजना स्पष्ट नहीं है, या वे अपनी योजना को अभी व्यक्त नहीं करना चाहते।"

बाद में सुभाष कलकत्ते जाकर चितरंजनदास से मिले, और उनके नेतृत्व में देश के काम में जुट गये।

अलीभाईयों की गिरफ्तारी

असहयोग का तूफ़ान जंगल की आग की भांति देशभर में फैल गया। बंगाल में बड़े ज़ोर का आन्दोलन चल पड़ा। वाइसराय लॉर्ड रीडिंग ने

गांधीजी से आन्दोलन के प्रति सरकारी नीति स्पष्ट करते हुए कहा कि जबतक आन्दोलन हिंसात्मक रूप धारण नहीं करता, तबतक सरकार इसमें कोई बाधा न डालेगी। वाइसराय ने मौलाना मौहम्मद अली की कुछ तक़रीरों की ओर गांधी जी का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि देखिये इनसे हिंसा को उत्तेजना मिलती है। इस पर गांधीजीने मौलाना को समझाने को कहा, जिसके फलस्वरूप मौलाना ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया। लेकिन कुछ समय बाद करांची में खिलाफ़त कान्फरेंस के समय उन्होंने मुसलमान भाईयों को जोश दिलाते हुए यह कह दिया कि किसी भी ईमानदार मुसलमान के लिये सरकारी फ़ौज में नौकरी करना हराम है। बस सरकारने अन्य मुसलमान नेताओं के साथ अलीभाईयों को गिरफ़्तार कर दो साल के लिये जेल भेज दिया।

देशबंधु दास ओर सुभाष बाबूकी गिरफ्तारी

धीरे-धीरे १ वर्ष की अवधि बीती जा रही थी, और स्वराज कहीं नजर नहीं आ रहा था। संयोगवश १७ नवंबर को युवराज भारत पहुँच रहे थे। कांग्रेस ने युवराज का बहिष्कार करने का निश्चय किया और १७ नवंबर को देशभर में हड़ताल मनाना तय हुआ। लेकिन युवराज के बंबई पहुँचते ही वहाँ भयंकर उत्पात हो गया और गांधीजी के रोके भी लोग न रुके। इस पर गांधीजी को बड़ा दुख हुआ और उन्होंने देश में शान्ति स्थापित करने के लिये ५ दिन का उपवास किया। इस अवसर पर लोगों की हिंसात्मक प्रवृत्तियों के ऊपर कटाक्ष करते हुए गांधीजीने कहा था—"मेरे नथुनों में से स्वराज की दुर्गंध आ रही है।"

उधर कलकत्ते में सरकार ने स्वयंसेवक दल को ग़ैर-क़ानूनी क़रार दे दिया था, जिससे बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी कीओर से सविनय अवज्ञा शुरू करने

का प्रस्ताव पास किया गया। बस धड़ाधड़ गिरफ़्तारियाँ होने लगीं। दास बाबू की धर्मपत्नी और उनके पुत्र गिरफ़्तार कर लिये गये। विद्यार्थी और मजदूर हज़ारों की तादाद में आकर स्वयंसेवकों में नाम लिखाने लगे। दिसंबर में देशबंधु दास और सुभाष बाबू भी पकड़ लिये गये। इस अवसर पर मिदनापुर में लगान–बन्दी का आन्दोलन, पंजाब में अकाली आन्दोलन और मलाबार में मोप–ला विद्रोह भी शुरू थे जिससे देशव्यापी असहयोग के आन्दोलन ने और भी ज़ोर पकड़ा।

समझौते का प्रस्ताव

२४ दिसबर को युवराज कलकत्ता पहुँचने वाले थे, इससे अधिकारी लोग बड़े चिन्तित थे कि परिस्थिति को किस तरह क़ाबू में लाया जाय। लॉर्ड रीडिंग ने पंडित मदनमोहन मालवीय जी से बातचीत करके उन्हें देशबंधु दास के पास अलीपुर जेल में भेजकर कहलवाया कि यदि कांग्रेस अपना आन्दोलन बन्द कर दे तो आन्दोलन के सब क़ैदियों को छोड़ दिया जायगा, स्वयंसेवकों के ऊपर से रोक हटा ली जायगी, तथा गोलमेज परिषद् द्वारा हिंदुस्तान का विधान तय किया जायगा। इस विषय में जब गांधीजीकी सलाह ली गई तो उन्होंने अलीबन्धुओं के छुटकारे की शर्त पेश की, और कहा कि गोलमेज परिषद् की तारीख़ आदि की घोषणा अभी से हो जानी चाहिये। दुर्भाग्य से इस चर्चा में बहुत समय लग गया और तार आदि समय पर न पहुँचने से समझौता न हो सका।

मुकम्मिल आज़ादी का प्रस्ताव

दिसंबर के अंतिम सप्ताह में कांग्रेस–अधिवेशन की तैयारियाँ हो रही थीं। दास बाबू कांग्रेस के सभापति चुने गये थे, लेकिन उनकी गैर–हाजिरी में

हकीम अजमल खां को सभापति बनाया गया। इस अवसर पर अहिंसात्मक असहयोग का समर्थन करते हुए सविनय अवज्ञा का प्रस्ताव पास हुआ, और आन्दोलन के पूर्ण अधिकार गांधीजी को सौंप दिये गये। इस समय मौलाना हसरत मोहानीने "विदेशी-नियंत्रण को सर्वथा हटाकर मुकम्मिल आज़ादी" का प्रस्ताव रखते हुए बड़ी जोशीली तक़रीर की लेकिन गांधीजीने इस प्रस्ताव को "अथाह समुद्र के गर्त में ले जाने वाला" बताकर उसका विरोध किया। अस्तु, साल ख़तम होने के पेश्तर ही गांधीजी को छोड़कर अन्य सब नेता जेल की कोठरियों में पहुँच चुके थे।

गांधीजी की देन

भारत के इतिहास में सन् १९२१ का साल बहुत महत्त्व का है। इसके पहले कांग्रेस एक वैधानिक संस्था थी जो केवल प्रस्ताव पास करना जानती थी। गांधीजी ने ही इसे सर्वप्रथम देशव्यापी प्रगतिवादी संस्था बनाया। इस समय से तिरंगा झंडा राष्ट्रीय झंडा स्वीकार किया गया, अंग्रेजी का स्थान हिंदुस्तानी को मिला, और खादी देशभक्तों की पोशाक बन गई। सुभाष बाबू लिखते हैं—

"निस्सन्देह १ वर्ष के भीतर देश में इतनी आशातीत जागृति पैदा करने का श्रेय महात्मा गांधीको ही है।"

सुभाष बाबूका मानना था कि देशबंधु चितरंजनदास, पंडित मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतराय का गांधी जी के ऊपर बहुत प्रभाव था। यदि ये व्यक्ति जीवित रहते तो निश्चय ही कांग्रेस असाधारण प्रगति करती और संभवतः देश की कुछ और ही दशा होती। जो कुछ भी हो, "महात्माजी की सेवायें इतनी अनमोल हैं कि हिमालय जैसी भूल कर गुज़रने पर भी उनके देशवासी उन्हें क्षमा करना जानते हैं।"

[३]

आन्दोलन बन्द (१९२२)

चौरीचौरा काण्ड

करबन्दी का आन्दोलन शुरू करने के पहले गांधीजीने हमेशा की तरह १ फ़र्वरी को लॉर्ड रीडिंग को एक विस्तृत पत्र लिख कर भेजा कि यदि सात दिन के अन्दर-अन्दर ब्रिटिश सरकार का हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ तो वे बारडोली में लगानबन्दी का आन्दोलन शुरू कर देंगे। लेकिन इसके उत्तर में सरकारने बबई के उपद्रव आदि की निन्दा करते हुए अपनी दमननीति का समर्थन किया। इस मौक़े पर ४ फ़र्वरी को अचानक गोरखपुर के पास चौरीचौरा नामक गांव में एक पुलिस के थाने में आग लगा दी गई जिससे कुछ पुलिस के लोग मर गये। लेकिन इस घटना मे लड़ाई का सारा नक़्शा ही बदल गया। महात्माजी जनता के इस हिंसात्मक कृत्य से भयभीत हो उठे, और उन्होंने बारडोली में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक बुलाकर सत्याग्रह को एकदम मुल्तवी कर दिया। और सर्वप्रथम चरखा चलाना, राष्ट्रीय विद्यालय खोलना, मादक द्रव्य-निषेध आदि रचनात्मक कार्यों पर ज़ोर दिया जो बिना कोई क़ानून भंग किये अहिंसात्मक रूप से किये जा सकते थे। इस समय निम्न प्रस्ताव पास किये गये—

(१) चौरीचौरा में जनता ने जो अमानुषिक बरताव किया है, उसकी यह समिति निन्दा करती है।

(२) सत्याग्रह बन्द कर दिया जाय और किसानों को चाहिये कि वे सरकारी लगान अदा कर दें। लगान अदा न करना कांग्रेस के आदेश के विरुद्ध है।

(३) देश में अहिंसा का वातावरण तैयार होने तक सामूहिक सत्याग्रह स्थगित रक्खा जाय।

(४) जुलूस और सभायें बन्द की जाँय।

(५) ज़मींदारों के क़ानूनी अधिकारों में कांग्रेस कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहती। वह चाहती है कि रैयत और ज़मींदार दोनोंका समझौता हो जाय।

बस आन्दोलन ख़तम! कहने की आवश्यकता नहीं यह गांधीवाद की ज़बर्दस्त हार थी। इस से स्पष्ट था कि गांधीवाद के सिद्धांत राष्ट्रीय संग्राम को आगे बढ़ने से रोक रहे थे। इसीलिये गांधी जी को इस कार्रवाई से देशभर में बड़ी खलबली मच गई कि यह तो आन्दोलन का गला घोंट दिया गया। पंडित मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय और देशबंधु दास आदि नेताओं ने इस पर बड़ा क्षोभ प्रकट किया और जेल के भीतर से गांधी जी की सख़्त आलोचना करते हुए अपने विस्तृत पत्रों में लिखा कि जब देश मोर्चे पर बढ़ा जा रहा था उसको एकदम रोक देना कदापि उचित न था लेकिन गांधी जी ने इसके उत्तर में कहा कि जेल में जाकर मनुष्य एक नागरिक के अधिकारों से वंचित हो जाता है, अतएव इस सलाह का कोई मूल्य नहीं।

गांधीजी की गिरफ्तारी

सरकार घात लगाये बैठी थी। लगान-बन्दी के आन्दोलन से वह एकदम संत्रस्त हो उठी थी, और गांधीजी को गिरफ्तार कर जेल में भेज देना चाहती थी। लेकिन डर था कि कहीं जनता उत्तेजित न हो उठे और फिर से १६१६ की आवृत्ति न हो जाय। इतने में चौरीचौरा काण्ड हो गया जिस की वजह से कांग्रेसियों में बड़ा क्षोभ हुआ और देशभर में निराशा का वातावरण छा गया। सरकार के लिये यह सुवर्ण-अवसर था। उसने राजद्रोहपूर्ण लेख लिखने के अपराध में १० मार्च को गांधीजी को पकड़ लिया। गांधीजीने अहमदाबाद की अदालत में एक बड़ा हृदयस्पर्शी बयान देते हुए कहा—

"इंगलैंड और भारत की जनता को मैं यह बता देना चाहता हूँ कि एक कट्टर सहयोगी और राजभक्त से मैं एक असहयोगी और राजद्रोही कैसे बन गया।"

अदालत के जज तथा अन्य अफ़सरों को संबोधन करते हुए उन्होंने कहा—

"यदि आप लोग हृदय से समझते हैं कि जिस क़ानून का आप लोग प्रयोग कर रहे हैं वह अनुचित है और मैं निर्दोष हूँ तो आप लोग अपने-अपने पदों से स्तीफ़ा दे दें, और यदि आप समझते हों कि जिस क़ानून का मेरे ख़िलाफ़ प्रयोग किया जा रहा है, वह प्रजा के लिये हितकर है तो मुझे कड़े से कड़ा दण्ड दें।"

कहना न होगा महात्मा जी को ६ वर्ष की सज़ा सुना दी गई।

स्वराज पार्टी का जन्म

देश में गिरफ़्तारियों का तांता लगा था। पंडित मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय, देशबंधु दास, सुभाषचन्द्र बोस आदि प्रमुख व्यक्तियों को

पकड़कर जेल में डाल दिया गया था। कांग्रेस के नियमानुसार कांग्रेसी लोग अदालत में जाकर कोई सफ़ाई नहीं पेश कर सकते थे, अतएव राजनैतिक क़ैदियों पर मुक़दमे चलाकर उन्हें सज़ा देना सरकार के लिये एक खिलवाड़ बन गया था। देशबंधु और सुभाष बाबू के ऊपर दो मास मुक़दमा चला और तत्पश्चात् उन्हें छह-छह महीने की सज़ा देकर अलीपुर सेन्ट्रल जेल में भेज दिया।

यहाँ दास बाबू ने कौंसिल-प्रवेश द्वारा सरकार से असहयोग करने की योजना बनाई। दास बाबू का कहना था कि हम लोगों के कौंसिलों में न जाने से वहाँ अयोग्य व्यक्ति पहुँच कर सरकार की मदद करते हैं जिससे सरकार को यह कहने का मौक़ा मिलता है कि हम लोग हिन्दुस्तानियों की मदद से ही हिन्दुस्तान पर शासन कर रहे हैं। यद्यपि वे जानते थे कि कौंसिलों में पहुँचकर ठोस कार्य करना संभव नहीं, लेकिन कौंसिलों के अन्दर रहकर जनता में सरकार के विरुद्ध वातावरण तैयार किया जा सकता था। देशबंधु दास की यह योजना आगे चलकर स्वराज पार्टी के रूप में प्रस्फुटित हुई। इसके विरुद्ध अपरिवर्तन-वादियों का कहना था कि बहिष्कार और सत्याग्रह की उग्र नीति को छोड़ कर कौंसिल-प्रवेश करना ठीक नहीं।

इधर गांधी जी की गिरफ़्तारी होने के बाद लोगों की समझ में न आता था कि आगे क्या किया जाय? आन्दोलन जारी रक्खा जाय या बन्द कर दिया जाय? इस समय नेताओं की एक समिति क़ायम की गई जो देश में घूमकर सब परिस्थिति का पता लगाये। अधिक संख्यक लोगों का ख़्याल था कि अभी आन्दोलन नहीं चलाया जाय। लेकिन कुछ कार्य तो होना चाहिये। क्या देशबंधु दास की योजना स्वीकार की जाय? हकीम अजमल खां, पंडित मोतीलाल नेहरू, विट्ठलभाई पटेल, इस योजना के पक्ष में थे तथा डॉ. अनसारी, के. आर. ऐयगर, और राजगोपालाचार्य विपक्ष में।

इस समय देशबंधु दास की अध्यक्षता में गया में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जब कि देशबंधु दास ने अपनी कौंसिल–प्रवेश की योजना पेश की। इस पर एस. श्रीनिवास ऐयंगर ने संशोधन पेश करते हुए कहा कि कांग्रेसी उम्मीदवारी के लिये खड़े हों, परन्तु कौंसिलों में स्थान ग्रहण न करें। पंडित मोतीलाल नेहरू ने कुछ शर्तें रखते हुए इसका समर्थन किया। अपरिवर्तन–वादियों ने इसका काफ़ी विरोध किया। इस पर दास बाबू ने कांग्रेस से अपना स्तीफ़ा दे दिया और पंडित मोतीलाल नेहरू की ओर से स्वराज पार्टी के स्थापित करने की घोषणा की गई।

[४]

स्वराज पार्टी की स्थापना (१९२३-५)

स्वराजी कौंसिलों में

गया से स्वराजी नेता आशा लेकर लौटे थे। उन्होंने अपने सिद्धांतों का जगह-जगह प्रचार करना शुरू कर दिया। पार्टी की पहली परिषद् इलाहाबाद में पं. मोतीलाल नेहरू के घर पर हुई, जिसमें पार्टी के विधान और योजनायें तैयार की गईं। लेकिन परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी दोनों में कटुता बढ़ती जा रही थी। इस समय मौलाना अबुलकलाम आज़ाद की अध्यक्षता में दिल्ली में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ, जिस में उन्होंने कांग्रेसियों को निर्वाचनों में खड़े होने की आज़ादी देते हुए कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध प्रचार को हमेशा के लिये रोक दिया। लगभग इसी समय मौलाना मौहम्मदअली भी जेल से छूट कर आये थे। उन्होंने कहा कि उन्हें गांधीजी से तारबरक़ी द्वारा गुप्त खबर मिली है कि कांग्रेस के दोनों दलों में समझौता हो जाना चाहिये। अतएव दिल्ली अधिवेशन पर प्रस्ताव पास हो गया कि कांग्रेसी कौंसिलों में जा सकते हैं।

स्वराजियों की ख़ुशी का ठिकाना न था। पं. मोतीलाल नेहरू और देशबंधु दास को असेंबलियों में भेजा गया। म्युनिसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि पर भी स्वराजियों का अधिकार हो गया। देशबंधु दासने 'फ़ारवर्ड' नामक एक दैनिक अखबार निकालना शुरू किया जिसमें सुभाष बाबू ने भी काम किया।[१]

स्वराजियों का अटूट परिश्रम

कांग्रेस के इतिहास में १९२४ का वर्ष एक आशामय वर्ष माना जाता है। स्वराजी लोग बड़े ज़ोर के साथ चुनाव लड़ रहे थे। कलकत्ता म्युनिसिपल कॉरपोरेशन के चुनाव में देशबंधु दास कलकत्ते के मेयर बने और सुभाष बोस चीफ़ एक्जिक्यूटिव ऑफ़िसर (मुख्य प्रबंधकर्ता)। इस समय सुभाष की उम्र केवल २७ वर्ष की थी! चुनाव में मुसलमान भी आधी तादाद में आये थे। बस स्वराजियों के हाथ में शासन-सूत्र आते ही सुधारों का तांता लग गया। कर्मचारी गण खादी पहनकर आने लगे, सड़कों के पुराने नाम बदल कर उनकी जगह देश के नेताओं के नाम रख दिये गये, म्युनिसिपल स्कूल खोले गये जिनमें लड़के-लड़कियों को मुफ़्त शिक्षा दी जाने लगी, ग़रीब बच्चों को मुफ़्त दूध मिलने लगा, मुफ़्त दवाख़ाने खुल गये, स्वास्थ्य-गृह खोले गये, तथा नई नियुक्तियाँ

---

१ इस वर्ष की घटनाओं में [क] नागपुर का झंडा-सत्याग्रह, [ख] नमक कर-वृद्धि, [ग] नाभा महाराज को गद्दी से उतारना, [घ] केनिया में प्रवासी भारतीयों की असंतोषजनक हालत, (ङ) पंजाब में हिन्दू-मुसलिम दंगे, (च) कोकोनडा में कांग्रेस अधिवेशन, (छ) श्री डांगे का बंबई में समाजवाद के साहित्य का प्रचार आदि घटनायें मुख्य हैं।

करते समय मुसलमान आदि अल्प-संख्यक जातियों का ध्यान रक्खा जाने लगा। शहर में नई चेतना जागृत हो गई और नागरिकों ने महसूस किया कि म्युनिसिपैलिटी उनकी संस्था है और उसके कार्यवाहक जनता के सेवक।

उधर स्वराजी लोग कौंसिलों में जाकर सरकार के विरुद्ध जी-जान से लड़ रहे थे। कभी वे सरकारी बजट को रद्द करते, और कभी राजनैतिक क़ैदियों को छोड़ने तथा १८१८ के रेगूलेशन ३ को रद्द करने आदि के प्रस्ताव पेश करते थे। वस्तुतः जो बात निर्वाचन के बहिष्कार से पैदा न हो सकी, वह बात स्वराजियों ने कौंसिलों में जाकर बताई।

महात्माजी का पार्टी को आशीर्वाद

इस समय दो महत्त्वपूर्ण घटनायें हुई। अप्रैल में तारकेश्वर (बंगाल) के महन्त के ख़िलाफ़ देशबंधु दास ने एक आन्दोलन खड़ा किया जो तारकेश्वर सत्याग्रह के नाम से मशहूर हुआ। इस में पुलिस ने शान्त जुलूसों पर बहुत अत्याचार किये जिस से इस आन्दोलन ने राजनैतिक रूप धारण कर लिया। दूसरी घटना गोपीनाथ साहा के बलिदान-सूचक प्रस्ताव के संबंध में हुई। बात यह थी कि गोपीनाथ साहा नामक एक बंगाली युवक ने कलकत्ता के पुलिस कमिश्नर की हत्या करने का प्रयत्न किया था। लेकिन उन्होंने भूल से उनकी जगह मिस्टर डे नामक किसी दूसरे अंग्रेज़ को मार दिया था। अदालत में साहा ने सब बातें सच सच कह दीं और डे की हत्या करने के लिये अफ़सोस ज़ाहिर किया। फलतः गोपीनाथ साहा को फांसी की सज़ा दे दी गई।

सिरगंज परिषद् के अधिवेशन पर स्वराज पार्टी ने साहा के साहस और बलिदान की प्रशंसा करते हुए इस संबंध में एक प्रस्ताव किया। इन दोनों बातों से स्वराज पार्टी ने जनता में काफ़ी ऊंचा स्थान प्राप्त कर लिया था।

इधर गांधीजी बीमारी के कारण ५ मई को जेल से मुक्त कर दिये गये। सब लोग बड़ी उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करने लगे कि गांधी जी स्वराज पार्टी के प्रति क्या रुख़ अख़्तियार करते हैं, लेकिन गांधी जी ने पार्टी का विरोध नहीं किया। देशबंधु दास और पं. मोतीलाल नेहरू से मिलकर उन्होंने तय किया कि वे खादी-प्रचार में लगें, और स्वराज पार्टी राजनीति को सम्हाले। इसी समय महात्मा जी ने अखिल भारतीय चरखा संघ की स्थापना की। स्वराज पार्टी का अलग कार्यालय बन गया। आगे चलकर दोनों दल एक दूसरे के काफ़ी नज़दीक आ गये, और गांधी जी ने स्वराज पार्टी को आशीर्वाद देते हुए प्रशंसा-सूचक उद्गार व्यक्त किये।

हिन्दू-मुसलिम एकता का प्रयत्न

दुर्भाग्य से इस समय फिर से हिन्दू-मुसलिम दंगों का दौर-दौरा हुआ, जिसके फल स्वरूप कोहाट, दिल्ली, नागपुर, लखनऊ, जबलपुर आदि स्थानों में भयंकर उत्पात मचे। इस समय गांधी जी ने दिल्ली में एकता-परिषद् बुलाई और देश में अमन क़ायम करने के लिये १५ मेंबरों का एक बोर्ड बनाया। इस बोर्ड के मेंबरों ने प्रतिज्ञा की कि वे धर्म और मत की स्वतंत्रता के सिद्धांतों का पालन करेंगे, और जो व्यक्ति इस उसूल के विरुद्ध आचरण करेगा, उसकी निन्दा करेंगे।

इस अवसर पर हिन्दू-मुसलमानों के क्रोधोन्माद और रक्तपात का ज़िम्मेवार अपने आप को ठहराते हुए गांधीजी ने प्रायश्चित स्वरूप २१ दिन का उपवास किया।

इस समय तुर्की में प्रजातंत्र राज्य क़ायम होजाने से ख़लीफ़ा का पद ख़तम हो गया था, अतएव यहाँ का ख़िलाफ़त आन्दोलन भी समाप्त हो

गया, और इसका स्थान फिर से मुसलिम लीग को मिला, जो सन् १९२० से एक प्रकार से मृतप्राय हो चुकी थी।

सुभाष बाबू की फिर गिरफ़्तारी

कौंसिलों के भीतर और बाहर स्वराजियों तथा राष्ट्रवादियों का बढ़ता हुआ प्रभाव देखकर सरकार के कान खड़े हो गये। तारकेश्वर सत्याग्रह ज़ोर पकड़ता जा रहा था। सरकार के कथनानुसार बंगाल में क्रांतिकारी प्रवृत्तियाँ बढ़ रही थीं। इस मौक़े पर कलकत्ते में स्वराज पार्टी का अधिवेशन हुआ जिस में बड़ी दूर-दूर से लोग आये। इस अधिवेशन की सफलता देख कर सरकार बहुत कुढ़ी, और उसने पार्टी को कुचलने की ठान ली। यों तो दिल्ली कांग्रेस के अधिवेशन के समय से ही सरकार ने स्वराज पार्टी के कार्यकर्ताओं को १८१८ रेगूलेशन ३ के अनुसार गिरफ़्तार करना शुरू कर दिया था, लेकिन इस समय उसने और उग्र रूप धारण किया। २५ अक्टूबर को १८१८ के रेगुलेशन ३ के अनुसार बहुत से कांग्रेसी पकड़ लिये गये, जिन में सुभाष बोस, अनिलबरन राय और एस. सी. मैत्र मुख्य थे।

सरकार के इस कृत्य से देश में काफ़ी उत्तेजना फैली, लेकिन कहा गया कि क्रांतिकारियों की प्रवृत्तियों का दमन करने के लिये यह कारवाई की गई है। जनता की उत्तेजना देखकर एक बार तो सरकार ने सुभाष को छोड़ देने का विचार भी किया, मगर पुलिस-अधिकारियों की शान का सवाल था! सुभाष बाबू ने 'इंडियन स्ट्रगल' में लिखा है—"मैं म्युनिसिपैलिटी के काम में इतना व्यस्त रहता था कि मुझे अन्य किसी कार्य के लिये ज़रा भी अवकाश नहीं मिलता था, अतएव अधिकारी वर्ग चिन्तित था कि मुझ पर क्या इल्ज़ाम लगाया जाय।"

इस समय कलकत्ते के स्टेट्समैन और इंगलिशमैन नामक अर्ध-योरोपियन पत्रों ने सरकार की दुहाई देते हुए लिखा कि सुभाष क्रांतिकारी षड्यंत्रों के दिमाग़ हैं, लेकिन जब सुभाष के वकीलों ने इन पत्रों पर मानहानि का दावा दायर किया तो इन्हें लेने के देने पड़ गये।

सरकार की इस नीति से देशबंधु दास बड़े क्षुब्ध हो गये थे, और उन्होंने यह खुल्लमखुल्ला कहा था—"यदि देशप्रेम अपराध है तो मैं भी अपराधी हूँ, तथा कलकत्ता कॉरपोरेशन का एक्जिक्यूटिव ऑफ़िसर जितना दोषी है उतना ही दोषी उसका मेयर है।"

वास्तव में दास बाबू इस समय कांग्रेस के सर्वे-सर्वा थे, और सरकार उनका लोहा मानती थी।

कांग्रेसी होने के लिये सूत कातना अनिवार्य

दिसंबर में गांधी जी के सभापतित्व में बेलगांव में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। हिंसा का बहिष्कार और हिन्दू-मुसलिम दंगों पर खेद प्रकट करने के प्रस्ताव पास करते हुए हाथ की कताई और बुनाई पर ज़ोर दिया गया, तथा कांग्रेस के प्रत्येक मेम्बर को चार आने फ़ीस देने के बजाय निश्चित परिमाण में हाथ का कता सूत देने का नियम बनाया गया।

देशबंधु का अवसान

सन् १९२५ में फ़रीदपुर में बंगाल के कांग्रेसियों की वार्षिक परिषद् हुई जिस में देशबंधु दास को सभापति चुना गया। परिषद् में जल्दी से जल्दी औपनिवेशिक स्वराज प्राप्त करने के ऊपर ज़ोर दिया गया।

इस समय लॉर्ड रीडिंग की जगह लॉर्ड बरकनहेड हिन्दुस्तान के वाइसराय हो कर आये थे। सब लोग उम्मीद करते थे कि अब शायद कुछ

महत्त्वपूर्ण घोषणा हो। लेकिन इस समय १६ जून को देशबंधु दास का अवसान हो गया।

ब्रिटिश सरकारने देखा कि उनका शत्रु खतम हो गया है, उसने सुख की सांस ली, और उनसे जो सरकार की समझौते की बातचीत चल रही थी वह एक तरह से बन्द हो गई। मरते समय देशबंधु अपनी तमाम सम्पत्ति देश को समर्पित कर गये। गांधीजीने उनका स्मारक खड़ा करने के लिये १ लाख रुपये इकट्ठे किये।

देशबंधु दास की मृत्यु से देश को महान् क्षति पहुँची। उनके बाद पार्टी की ज़िम्मेवरी पं० मोतीलाल नेहरू के ऊपर आकर पड़ी। उन्होंने सरकार के साथ समझौते की बात चलाने का प्रयत्न किया लेकिन कोई नतीजा न हुआ।

[५]

गति-अवरोध (१९२५-७)

राजनीति और धार्मिकता का संमिश्रण

सुभाष बाबू लिखते हैं—"महात्मा गांधी के व्यक्तित्व के लिये अत्यन्त आदरशील रहते हुए भी स्वराज पार्टी एक प्रकार से गांधीजी के सिद्धांतों से सहमत नहीं थी। गांधीजी के राजनीति से अलग होने का भी यही कारण था। दरअसल गांधीजी के सादे खानपान, निरामिष भोजन, सादी पोशाक, और सत्य-अहिंसा के सिद्धान्तों ने उन्हें भारतवासियों की निगाह में एक संत-महात्मा के पद पर लाकर बठा दिया था। यद्यपि कुछ लोग उनकी बातों से सहमत न थे लेकिन जनता के हृदय में उन्होंने घर कर लिया था। गांधीजी को इसका लाभ पर्याप्त मात्रा में मिला।"

"लेकिन इसके साथ जब हम अपने देशकी अधोगति के कारणों पर गंभीर दृष्टि से विचार करते हैं तो हमें पता लगता है कि ईश्वरीय शक्ति और भाग्य में विश्वास रखने से, आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों की ओर उदासीन रहने से, युद्धकला में पिछड़ जाने से, पग पग पर शांति और संतोष की दुहाई देने से, तथा अहिंसा-पालन के सिद्धांतों को चरम कोटि तक पहुँचा देने से ही भारत का अधःपतन हुआ है। कहना न होगा कि सन् १९२० में जब गांधीजी ने लोगों को असहयोग और सत्याग्रह का मंत्र सिखाया तो अधिकतर कांग्रेसियों

ने उन्हें अपना राजनैतिक नेता ही नहीं बल्कि साथ ही धार्मिक गुरू भी स्वीकार किया। यहाँ तक कि लोगों ने मांस-मछली का त्याग कर दिया, पहनने की पोशाक बदल दी, सुबह-शाम की प्रार्थना उनके नित्य कर्मों में शामिल हो गई, तथा राजनैतिक स्वतंत्रता के स्थान पर आध्यात्मिक स्वतंत्रता की बातें होने लगीं। अनेक जगह गांधीजी की अवतार रूप में पूजा होने लगी, और उनके अनुयायी उनके वचनों को वेदवाक्य मानने लगे।"

"आगे चलकर तो स्वयं महात्माजी और उनके अनुयायी ब्रिटिश माल के बहिष्कार का इसलिये विरोध करने लगे कि उससे जनसमुदाय में ब्रिटिश जनता के खिलाफ़ घृणा पैदा होती है! कहने की आवश्यकता नहीं, जिस देश में सर्वत्र अध्यात्मवाद ही फैला हुआ है, वहाँ राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का एक ही रास्ता हो सकता है कि जनता में बुद्धिवाद का प्रचार किया जाय और जीवन के भौतिक तत्त्व को समझ कर उसे आधुनिक रूप दिया जाय। ऐसी दशा में गांधीजी का राजनैतिक क्षेत्र में धार्मिक तत्त्वों का समावेश करना बहुत से राष्ट्र के शुभ चिन्तकों को अखरता था। इसीलिये महात्माजी के सिद्धांतों का समझदार लोग विरोध करने लगे थे, तथा राइट और लैफ़्ट दल के लोग उनके बुद्धिवाद से उकता कर स्वराज पार्टी में आकर सम्मिलित हो गये थे।

स्वराज पार्टी में मतभेद

देशबंधु के अवसान के बाद देश में एक प्रकार की निराशा का साम्राज्य छा गया। गांधीजी अभी राजनीति से अलग थे। महाराष्ट्र के स्वराजी स्वराज पार्टी से अलग हो गये और उन्होंने प्रतिसहयोग-वादी (Responsive) पार्टी बनाई, जो आगे चलकर हिन्दू महासभा में अन्तर्हित हो गई। देशबंधु की मौजूदगी में बंगाल लेजिस्लेटिव कौंसिल में पृथक्-निर्वाचन के

आधार पर बहुत से मुसलमान चुनकर आये थे, अब उनका भी स्वराज पार्टी में विश्वास न रहा।

सन् १९२५ के मध्य मे लेकर धीरे-धीरे स्वराज पार्टी की मौलिक नीति में परिवर्तन होते गये। जून महीने में पं. मोतीलाल नेहरू सरकारी स्कीन कमेटी के मेंबर होकर विलायत जाने की तैयारी में लगे थे। इस समय श्री विट्ठल भाई पटेल लेजिस्लेटिव असेंबली के अध्यक्ष चुने गये। सितंबर में मुडीमैन कमेटी की रिपोर्ट असेंबली में पेश हुई। इस समय पं. मोतीलाल नेहरू ने औपनिवेशिक स्वराज और गोल मेज परिषद् के लिये माँग पेश की, लेकिन इस मांग को सरकार ने ठुकरा दिया, जिससे पं. नेहरू तथा अन्य मेंबर असेंबली से उठकर चले आये। बाद में वर्ष के आखिर में लाला लाजपतराय एक स्वराजी की हैसियत से असेंबली में आये।

सन् १९२५ में कांग्रेस का अधिवेशन कानपुर में हुआ, जिसमें तय किया गया कि स्वराज पार्टी के निर्वाचन का काम स्वयं कांग्रेस को अपने हाथ में ले लेना चाहिये। लेकिन प्रश्न यह था कि कौंसिलों में जाकर कौनसी नीति अपनाई जाय? पंडित मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतराय का कहना था कि स्वराज पार्टी को वही असहयोग की पुरानी नीति अपनानी चाहिये। लेकिन पं. मदनमोहन मालवीय, श्री जयकर आदि इसके विरुद्ध थे। आगे चलकर लाला लाजपतराय ने स्वराज पार्टी से स्तीफ़ा दे दिया और मालवीयजी के साथ मिलकर, इंडिपेंडेन्ट पार्टी की स्थापना की। इस समय मद्रास के श्रीनिवास ऐयंगर स्वराज पार्टी में आकर शामिल हुए।

सन् १९२६ में हिन्दुस्तान में हिन्दू मुसलमानों के दंगों का बहुत ज़ोर रहा। गोवध और मसजिद के सामने बाजा ये दो बातें झगड़ों का मुख्य कारण थीं। एक बार अग्नि चेतन हो जाने पर उसका शान्त करना

कठिन हो जाता था। अनेक बार तो दुश्मन के जासूस आग में घी का काम करते थे। इन दिनों कलकत्ते में हिन्दू-मुसलमानों का बड़ा भयंकर दगा हुआ जो ६ सप्ताह तक चलता रहा। निश्चय ही इससे स्वराज पार्टी को बहुत क्षति पहुँची, और बंगाल की पार्टी तो छिन्न-भिन्न ही हो गई। १९२३ के निर्वाचन में अनेक राष्ट्रवादी मुसलमान स्वराजी की हैसियत से चुनकर आये थे, १९२६ में उनके स्थान पर अनेक अप्रगतिवादी मुसलमान घुस आये। इस समय कांग्रेस के विरोधी हिन्दू और मुसलमान दोनों 'धर्मसंकट' का नारा लगाकर साम्प्रदायिकता का पोषण कर रहे थे, जिससे देशभर में राष्ट्रवादियों की शक्ति कमज़ोर हो गई, और ब्रिटिश सरकारने फिर से सुख की सांस ली।

इस वक़्त देखा जाय तो देश के पास कोई कार्यक्रम नहीं रह गया था। लंबे-चौड़े प्रस्ताव पास करना और कौंसिलों में बैठकर मुठभेड़ें करना बस यही एक काम था। हाँ, खादी का काम ख़ूब ज़ोरों से चल रहा था, और अखिल भारतीय चरखायें संघ की शाखायें देशभर में फैल रही थीं।×

सुभाष बाबू का छुटकारा

बरमा जेल में सुभाष बाबू का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था, और उनका ४० पौंड वज़न कम हो गया था। बंगाल सरकार ने उन्हें अपने ख़र्च से स्विट्ज़रलैंड चले जाने को कहा। लेकिन स्वदेश छोड़कर वे बाहर जाने को तैयार न हुए। आख़िर सरकार ने उन्हें लगभग पौने तीन बरस के बाद १६ मई को रिहा कर दिया, जिसके उपलक्ष्य में देश में बड़ी ख़ुशियाँ मनाई गईं।

× इस वर्ष की अन्य घटनाओं में (क) पंजाब में नौजवान भारत सभा की स्थापना, (ख) नागपुर में हथियार-क़ानून सत्याग्रह, (ग) १६ पैंस के स्थान पर १८ पैंस का मुद्रा-विनिमय का बिल आदि महत्त्व की घटनायें हुईं।

[६]

आशा की किरणें (१९२७–८)

एकता-परिषद्

१९२७ के मध्य में परिस्थिति सुधरने लगी, तथा जनता में, विशेष-कर नौजवानों में, जागृति के चिह्न दिखाई पड़ने लगे। गांधीजी अभी राजनीति से अलग हो कर जीवन बिता रहे थे, पंडित मोतीलाल नेहरू योरोप चले गये थे। इस अवसर पर श्रीनिवास ऐयंगर मैदान में आये। बहुत समय तक देश-भ्रमण करने के बाद उन्होंने जातीय और साम्प्रदायिक ऐक्य स्थापित करने के लिये कलकत्ते में एकता-सम्मेलन का उद्घाटन किया। सम्मेलन में हिन्दू-मुसलिम दंगों की तीव्र निन्दा करते हुए कहा गया कि प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतंत्रता मिलना आवश्यक है लेकिन उस से सार्वजनिक व्यवस्था और सदाचार का भंग न होना चाहिये। इस सम्मेलन से कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं में काफ़ी जागृति हुई। आगे जा कर मुसलिम लीग ने भी इस सम्मेलन की हिन्दू-मुसलिम एकता का समर्थन करते हुए मुसलमानों के लिये सीट रिज़र्व रख कर संयुक्त निर्वाचन का प्रस्ताव पास किया।

कमीशन की नियुक्ति

इस समय भारत के नये वाइसराय लॉर्ड इरविन ने इंडियन स्टेच्युअरी कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की। देखा जाय तो कांग्रेस सन् २० से ही विधान को दोहराने के लिये गोलमेज परिषद् भरने पर जोर दे रही थी, लेकिन सरकार कानों में तेल डाले बैठी थी। इस कमीशन के सात सदस्य थे, जिसके अध्यक्ष थे जॉन साइमन। कमीशन का उद्देश्य था कि हिन्दुस्तान में आकर ब्रिटिश भारत के शासन-कार्य की, शिक्षा-वृद्धि की, प्रातिनिधिक संस्थाओं के विकास की एव तत्संबंधी विषयों की जाँच करें और इस बात की रिपोर्ट दें कि हिन्दुस्तान में उत्तरदायी शासन का सिद्धांत लागू हो सकता है या नहीं।

इस अवसर पर भारत के राजनीतिज्ञों को चुनौती देते हुए लॉर्ड बरकनहेड ने कहा था कि वे लोग भारत के लिये एक सम्मिलित विधान बनायें जो सब दलों को मान्य हो।

पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव

दिसंबर १९२७ में डॉ. अंसारी की अध्यक्षता में मद्रास में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जिस में साम्प्रदायिक एकता पर जोर दिया गया। इस अधिवेशन में साइमन कमीशन का बहिष्कार, विधान बनाने के लिये सर्वदल सम्मेलन की बैठक तथा औपनिवेशिक स्वराज के स्थान पर पूर्ण स्वाधीनता आदि अनेक महत्त्व के प्रस्ताव पास किये गये। पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव गांधीजी की अनुपस्थिति में हुआ था, जिसे गांधीजी ने "जल्दी में सोचा हुआ तथा बिना विचारे पास किया हुआ" बताया था।

इस मौक़े पर पंडित जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस तथा श्वेब क़ुरेशी जनरल सेक्रेटरी चुने गये।

समाजवाद का प्रवेश

सन् १९२८ का साल राजनैतिक दृष्टि से बहुत महत्त्व का माना जाता है। इस समय सब से पहले भारत की राजनीति में समाजवाद का प्रवेश हुआ जिस से भारत के नौजवान समाजवाद के सिद्धांतों से प्रभावित हुए और कांग्रेस के लैफ़्टविंग में एक नई चेतना दृष्टिगोचर होने लगी। मज़दूरों और किसानों की शक्तियाँ इस समय बढ़ रही थीं और उनमें वर्ग-चेतना ज़ोर पकड़ रही थी जिस से मिल-कारखानों में अक्सर हड़तालें हुआ करती थीं। ऑल इन्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने अब काफ़ी शक्ति संचित कर ली थी, तथा कानपुर की बैठक में हिन्दुस्तान के कम्युनिस्टों ने स्वतंत्र समाजवादी संघ क़ायम करने तथा ब्रिटिश ट्रेड्स यूनियन कांग्रेस और आम्सटेरडम की इन्टरनेशनल फेडरेशन आफ़ ट्रेड यूनियन से अपना संबंध विच्छेद करने की आवाज़ उठाई थी। बंबई के मिल मज़दूरों की गिरनी कामगार यूनियन के मेंबरों की संख्या काफ़ी बढ़ रही थी। तथा जगह-जगह युवक-संघ क़ायम हो रहे थे और युवक-परिषदें की जा रही थीं।

कमीशन का बहिष्कार

३ फ़र्वरी १९२८ को साइमन कमीशन बंबई के बंदरगाह पर उतरा, जिसके विरोध में देश भर में बड़े ज़ोर की हड़ताल मनाई गई। जहाँ कहीं भी कमीशन गया काले झंडों और 'गो बैक' (वापिस लौट जाओ) के नारों से उसका स्वागत हुआ। विद्यार्थियों और नौजवानों ने इन प्रदर्शनों में अधिक भाग लिया। पुलिस ने जनता पर खूब अत्याचार किये, नेताओं पर घोड़े दौड़ाये, और गोलीबारी की भी नौबत आई। लेकिन सब से दर्दनाक घटना लाहौर में हुई, जहाँ पंजाब की पुलिस ने लाला लाजपतराय को लाठियों और डंडों से पीटा, जिससे उन्हें बड़ी गहरी चोट आई और अन्ततः उन्हें

अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा । लोगों ने लाला लाजपतराय की मृत्यु के लिये पुलिस को ज़िम्मेवार ठहराते हुए एक निष्पक्ष जाँच कमेटी बैठाने को कहा मगर सरकार ने कोई ध्यान न दिया । इस घटना से भारतवासियों को बहुत धक्का लगा, और आगे चलकर सरदार भगतसिंह ने अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर इस हत्या का बदला लिया ।

नेहरू कमेटी की बैठक

कमीशन का बहिष्कार कर के ही भारत की प्रजा शान्त न हो गई, बल्कि बरकनहेड की चुनौती का उत्तर देने के लिये दिल्ली में फ़र्वरी और मार्च में सर्वदल सम्मेलन की बैठक की गई । इसके कुछ समय बाद पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की गई जिस का काम था भारत का नया विधान बनाना । इस कमेटी ने, जिसे नेहरू कमेटी के नाम से भी कहा जाता है, अगस्त में एक रिपोर्ट बनाकर पेश की जिसका राष्ट्रवादियों ने स्वागत किया । वस्तुतः इस रिपोर्ट से सरकार द्वारा नियुक्त साइमन कमीशन का काम बेकार हो गया । लखनऊ में सर्वदल सम्मेलन ने इस रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया, और कमेटी को उसके परिश्रम के लिये बधाई दी ।

इस मौक़े पर एक घटना और हुई जिसका उल्लेख कर देना आवश्यक है । कमेटी के बहु-संख्यक सदस्यों की अनुमति से औपनिवेशिक स्वराज को आधार मान कर भारत की वैधानिक समस्या पर विचार किया गया था, लेकिन इस पर कुछ नौजवान मेंबरों ने आपत्ति की । उनका कहना था कि जब मद्रास अधिवेशन पर कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास कर दिया है तो अब फिर से औपनिवेशिक स्वराज की ओर वापिस जाना ठीक नहीं ।

इस मौक़े पर कांग्रेस के लैफ़्टविंग के मेंबरों की एक प्राइवेट मीटिंग की गई, जिस में पंडित जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस ने

स्वाधीनता संघ (इन्डिपेन्डेन्स लीग) की स्थापना की। यह संस्था समाजवाद में विश्वास रखती थी और सामाजिक स्वतंत्रता इसका ध्येय था। दुर्भाग्यवश यह संस्था अधिक समय तक न टिकी और सन् १९३० में कांग्रेस में विलीन हो गई।

आगे चलकर कलकत्ता के सर्वदल सम्मेलन की बैठक के अवसर पर मिस्टर जिन्ना ने नेहरू कमेटी की रिपोर्ट का विरोध करते हुए १४ शर्तें पेश कीं, और बंगाल तथा पंजाब में जनसंख्या के आधार पर मुसलमानों के लिये सीटें रिज़र्व रखने आदि की मांगें रक्खीं। इसके बाद सिक्खों और हिन्दू महासभावादियों ने भी अपनी मांगें रखना शुरू कर दिया।

जनता में उत्साह की लहर

इस समय जनता में अपूर्व उत्साह और जोश दिखाई पड़ रहा था। जगह-जगह विद्यार्थी और नौजवानों की परिषदें हो रही थीं, तथा मज़दूर और किसानों में असंतोष की अग्नि बढ़ती जा रही थी। जमशेदपुर बंबई, लिलुआ, कलकत्ते आदि में बड़ी जंगी हड़तालें हो रही थीं। मई महीने में पूना में सुभाषचन्द्र बोस की अध्यक्षता में महाराष्ट्र प्रांतीय परिषद् की बैठक हुई। उधर बारडोली में वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में करबन्दी का सत्याग्रह शुरू हो गया। सरकार ने किसानों की ज़मीन-जायदाद ज़ब्त कर के पठानों की सहायता से अंधाधुंध कुर्कियाँ करा कर आन्दोलन को जी-जान से कुचलने का प्रयत्न किया, लेकिन सरकार को मुँह की खानी पड़ी और विजय जनता की हुई।

जनता की यह जागृति देख कर सुभाषचन्द्र मई महीने में साबरमती जा कर गांधीजी से मिले, और उन्हें जनता के जोश का परिचय कराते हुए देश में आन्दोलन चलाने की सलाह दी। लेकिन गांधीजी को अन्तर्ज्योति के दर्शन नहीं हो रहे थे, अतएव कुछ न हो सका।

कलकत्ते में कांग्रेस का अधिवेशन

१६२८ के आखिर में पं. मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में कलकत्ते में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अवसर पर बारडोली में सरदार वल्लभभाई पटेल की शानदार विजय पर उन्हें बधाई दी गई। इस समय कांग्रेस में दो दल नज़र आ रहे थे, एक दल औपनिवेशिक स्वराज के पक्ष में था, दूसरा पूर्ण स्वराज के। महात्माजीने प्रस्ताव रक्खा कि यदि सरकार नेहरू रिपोर्ट को ३१ दिसंबर १९२९ से पहले-पहले ज्यों की त्यों स्वीकार नहीं करती तो करबन्दी द्वारा अहिंसात्मक आन्दोलन शुरू किया जायगा। इस समय सुभाषचन्द्र बोस ने प्रस्ताव में संशोधन पेश करते हुए पूर्ण स्वराज की मांग रक्खी जिसका समर्थन पंडित जवाहरलाल नेहरू ने करते हुए कहा कि यह सभा मद्रास कांग्रेस के पूर्ण स्वाधीनता के निश्चय में विश्वास रखती है और स्वीकार करती है कि जबतक ब्रिटेन से भारत का संबंध विच्छेद न होगा तबतक भारत की प्रजा को असली आज़ादी हासिल नहीं हो सकती। लेकिन यह संशोधन पास न हो सका।

मज़दूरों का पंडाल पर क़ब्ज़ा

आन्दोलन शुरू करने का स्वर्ण-अवसर बीता जा रहा था। पंजाब और बंगाल में इस समय अधिक जोश था; १९३० में मजदूरों का उत्साह ठंडा पड़ गया था। कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन के समय ५०,००० मज़दूर एक जुलूस बनाकर कांग्रेसनगर में घुस आये और दो घंटे तक पंडाल में अपनी सभा करते रहे। अन्त में ये लोग समाजवादी संघ तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता-स्थापन के नारे लगाकर चले गये।

आन्दोलन के संबंध में आगे जाकर स्वयं महात्मा गांधी ने १९३० में 'यंग इंडिया' में लिखा था कि यह आंदोलन २ वर्ष पेश्तर आरंभ किया

जा सकता था । लेकिन होनहार कुछ दूसरी ही थी । आन्दोलन छिड़ा परन्तु बहुत देर बाद, जब साम्राज्यशाही अपना जाल बिछा जा चुकी थी । मार्च १९२९ में मज़दूरों के मुख्य मुख्य नेताओं को गिरफ़्तार कर सरकार ने उन पर षयंड्त्र के मुक़दमे चला दिये थे । मज़दूर और किसानों की ट्रेड यूनियन के कार्यकर्ता भी पकड़ लिये गये थे, तथा वाइसराय 'पब्लिक सेफ़्टी' आर्डिनेन्स जैसे क़ानून पास कर दिये थे ।

[७]

तूफ़ान के लक्षण (१९२९)

लैफ़्टविंग की बढ़ती हुई ताक़त

जैसा पहले कहा जा चुका है कलकत्ता कांग्रेस घड़ी की सूई को पीछे हटाना चाहती थी। लेकिन कुशल राजनीतिज्ञ महात्माजी लैफ़्टविंग की ताक़त को अच्छी तरह समझ गये थे। इसके लिये सब से पहला काम उन्होंने यह किया कि कांग्रेस के अगले अधिवेशन पर उन्होंने पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा की जिस से लैफ़्टविंग के कुछ नेता उनकी तरफ़ चले गये। वास्तव में इस समय लैफ़्टविंग से पुराने कांग्रेसी नेता, स्वराजी और अपरिवर्तनवादी सभी घबरा गये थे, तथा कलकत्ता कांग्रेस के मौक़े पर तो पंडित मोतीलाल नेहरू भी लैफ़्टविंग का विरोध करने के लिये गांधी जी के साथ जा मिले थे!

जतीन्द्र का अनशन

इस समय देश में दो महत्वपूर्ण घटनायें घटीं। लाहौर में एक नौजवान पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट मिस्टर साण्डर्स को, जिसे लाला लाजपतराय की मृत्यु के लिये जिम्मेवार बताया जाता है, मार दिया गया। दूसरे, दिल्ली में सरदार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने दर्शकों की गैलेरी में से असेंबली में खलबली पैदा करने के लिये बम गिराकर अपने आपको गिरफ़्तार करा लिया।

इस के बाद तमाम देश में क्रांतिकारी नौजवानों की गिरफ़्तारी का तांता लग गया, और लाहौर षड्यंत्र के नाम पर सरकार ने जो चाहा किया।

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि उन दिनों जेलों में राजनैतिक क़ैदियों के साथ बहुत दुर्व्यवहार किया जाता था। भगतसिंह आदि ने सरकार से माँग की कि उनके साथ क्रिमिनल क़ैदियों जैसा बरताव हरगिज़ न होना चाहिये। लेकिन जब सरकार ने इस बात पर कोई ध्यान न दिया तो उन्हें भूख हड़ताल करने के लिये बाध्य होना पड़ा।

धीरे-धीरे भूख हड़ताल को १॥ महीना बीत गया। लोगों को जब मालूम हुआ तो देश में जगह-जगह सभायें की गईं जिन में राजनैतिक क़ैदियों की मनुष्योचित मांग पूरी कर के उनकी रक्षा के लिये ज़ोर दिया गया। इस मौक़े पर जुलूस निकालते समय सुभाष बोस आदि कार्यकर्ता पकड़ लिये गये। लेकिन सरकार टस से मस होने का नाम न लेती थी। इतने में १३ सितंबर को समाचार मिला कि जतीन्द्रनाथ दास इस लोक को छोड़ कर चल बसे हैं!

यह ख़बर सुनते ही सारा देश कांप उठा, और सर्वत्र मातम छा गया। जतीन का शव लाहौर से कलकत्ते लाया गया, जहाँ अनगिनत नर-नारियों की भीड़ में उसका दाह-संस्कार किया गया। जतीन के परिवार के पास देश-विदेशों से सहानुभूति-सूचक अनेक संदेश आये, इनमें आयरलैंड के मैक्स्विनी परिवार का संदेश भी था। जतीन्द्र की मृत्यु ने देश में आग की चिनगारी फूँक दी जिसके फल स्वरूप जगह जगह विद्यार्थी और युवक-संघों की स्थापना होने लगी। आश्चर्य है महात्मा गांधी की क़लम से इस शहीद की बाबत एक शब्द भी नहीं लिखा गया!

इतनी बड़ी कुर्बानी के बाद सरकार ने कान फड़फड़ाये, और जेलों में सुधार करने के वास्ते राजनैतिक क़ैदियों को 'ए', 'बी' और 'सी' श्रेणियों

में बाँट दिया गया। इनमें 'सी' श्रेणी के क़ैदियों और क्रिमिनल-क़ैदियों में कोई फ़र्क़ न था; 'बी' वालों को खाने, चिट्ठी-पत्री, मुलाक़ात आदि की कुछ अधिक सहूलियतें दी गईं, और 'ए' वालों को 'बी' वालों से आगे कुछ और अधिक सुविधायें दी जाने की व्यवस्था की गई। लेकिन यह न भूलना चाहिये कि इन क़ैदियों में ९५ फ़ी सदी क़ैदियों को 'सी', तीन-चार फ़ी सदी को 'बी' और सिर्फ़ एक फ़ी सदी को 'ए' श्रेणी मिलती थी। आख़िर यहाँ भी हमारी सरकार ने दुरंगी नीति अख़्तियार की!

मेरठ षड्यंत्र केस

पहले कहा जा चुका है कि देश के मज़दूरों और किसानों में सर्वत्र अशांति और असंतोष की भावनायें बड़े वेग से फैल रही थीं, जिससे जगह जगह हड़तालों का तांता बंधा हुआ था। सन् १९२८ में कम्युनिस्टों की ओर से बंबई की कपड़े की मिलों में बड़े ज़ोरों की हड़ताल हुई। सरकार ने इसे तोड़ने की बहुत कोशिश की पर कुछ न हुआ। बाद में जाकर जब हड़ताल कुछ कमज़ोर पड़ने लगी तो मार्च १९२९ में सरकार ने ३१ व्यक्तियों पर कम्युनिस्ट इंटरनैशनल की सहायता से भारत-सम्राट् को राज्यच्युत करके सोवियत रूस के आदर्श पर साम्यवाद प्रचार करने का अभियोग लगाकर उन्हें गिरफ़्तार कर मेरठ में रख दिया।

इन अभियुक्तों में तीन अंग्रेज़ भी थे। यह मेरठ षड्यंत्र केस जेल के अन्दर ही अन्दर चार वर्ष तक चलता रहा। १६ जनवरी १९३३ को इस मुक़दमे का फ़ैसला सुनाया गया जिस में तीन अभियुक्तों को छोड़कर बाक़ी को ३ साल से लगाकर आजन्म कारावास तक की सजायें दी गईं; एक अभियुक्त जेल में ही मर गया था।

कौंसिलों से स्तीफ़ा

इस समय इंगलैंड में अनुदार दल की हार हो गई और उसके स्थान पर मजदूर दल की सरकार क़ायम हो गई। मजदूर दल की सरकार ने ह्विटले की अध्यक्षता में एक रॉयल कमीशन नियुक्त किया जो ह्विटले कमीशन के नाम से कहा जाता था। इस समय इन्डियन ट्रेड युनियन कांग्रेस के नेताओं को दो सीटें दी गईं, लेकिन जब नागपुर में पं. जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में ट्रेड यूनियन कांग्रेस की बैठक हुई तो बहु-संख्यक लोगों ने कमीशन का बहिष्कार किया, और राइटविंग के सदस्य मीटिंग से उठ कर चले आये, तथा उन्होंने ऑल इन्डिया ट्रेड यूनियन फेडरेशन नामक अलग संस्था स्थापित की।

इस वक़्त जून महीने में लॉर्ड इरविन चार महीने की छुट्टी लेकर लन्दन गये। उनका मन्शा था कि साइमन कमीशन की सुधार योजना के पार्लियामेंट में रक्खे जाने से पेश्तर विधान संबंधी स्थिति को स्पष्ट करने के लिये भारत के भिन्न-भिन्न दलों का सहयोग प्राप्त किया जाय। ऐसे मौक़े पर गांधीजी के दिल में यकायक परिवर्तन हो गया, और जौलाई महीने की कांग्रेस-कमेटी की बठक में एक प्रस्ताव पास कर दिया गया कि कांग्रेसियों को कौंसिलों से स्तीफ़ा दे देना चाहिये। इस बात की न तो भिन्न-भिन्न प्रांतों की कांग्रेस पार्टियों को कोई सूचना ही दी गई और न इस संबंध में उनकी कोई राय ली गई। पंडित मोतीलाल नेहरू ने भी गांधीजी का समर्थन किया!

मई महीने में जब इलाहाबाद में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक हुई तो श्री जे. एम. सेनगुप्त और सुभाष बाबू ने इसका विरोध किया। भिन्न-भिन्न कौंसिलों की कांग्रेस पार्टी ने भी गांधीजी के इस प्रस्ताव पर असंतोष प्रकट किया था, अतएव यह प्रस्ताव दिसंबर तक स्थगित कर दिया

गया। बाद में जा कर पं. मोतीलाल नेहरू और श्री जे. एम. सेनगुप्त के सहयोग से महात्माजी कामयाब हो गये।

पं. जवाहरलाल के गांधाजी की ओर झुकने से लैफ्टविंग को हानि

अगस्त में अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की मीटिंग में यह प्रश्न उठा कि अब की बार कांग्रेस का सभापति किसे चुना जाय? बहु-संख्यक सदस्य गांधीजी के पक्ष में थे, लेकिन उन्होंने अपनी जगह पं. जवाहरलाल का नाम पेश किया। पं. जवाहरलाल १९२७ में योरप से समाजवादी विचार ले कर लौटे थे, और वे समय-समय पर महात्मा गांधी तथा कांग्रेस के अन्य बुज़ुर्ग नेताओं के विपक्ष में रहकर लैफ़्टविंग का समर्थन किया करते थे। अतएव इस समय जवाहरलालजी के सभापति बनने से लैफ़्टविंग को काफ़ी क्षति हुई, यद्यपि इस से गांधीजी का काम काफ़ी निर्विघ्न हो गया था।

इस समय लॉर्ड इरविन लन्दन से लौटकर आये और उन्होंने घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार चाहती है कि अन्य उपनिवेशों के समान भारत को भी ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया में रहते हुए योग्य स्थान मिले और उसे क्रमशः उत्तरदायी शासन सौंप दिया जाय; इसके लिये लंदन में शीघ्र ही गोलमेज परिषद् बुलाई जायगी। लॉर्ड इरविन ने दिसंबर में श्री विट्ठलभाई पटेल की सलाह से महात्मा गांधी और पं. मोतीलाल नेहरू को मुलाक़ात के लिये बुलाया।

इसके कुछ दिन पहले नवंबर में दिल्ली में सर्वदल सम्मेलन की एक बैठक हुई थी जिस में बहुसम्मति से एक घोषणा-पत्र तैयार किया गया, जिस में हिन्दुस्तान को औपनिवेशिक स्वराज दिलाने का प्रयत्न करने

के लिये वाइसराय की प्रशंसा की गई और समस्त राजनैतिक क़ैदियों को रिहा कर देने की इच्छा व्यक्त की गई। इस घोषणा-पत्र पर पहले तो पं. जवाहरलाल नेहरू ने दस्तख़त करने से इन्कार कर दिया, लेकिन बाद में गांधीजी के कहने-सुनने से उन्होंने भी दस्तख़त कर दिये थे। लेकिन सुभाषचन्द्र बोस, डॉ. किचलू, और अब्दुल बारी ने इस पर दस्तख़त न करके एक अलग विज्ञप्ति-पत्र निकाला जिस में औपनिवेशिक स्वराज और गोलमेज परिषद् का निषेध किया गया, और कहा गया कि वही गोलमेज परिषद् असली परिषद् समझी जायगी जिस के नुमायन्दे हिन्दुस्तानियों द्वारा चुने गये हों। कांग्रेस के लेफ़्टविंग और नौजवानों ने भी इस विज्ञप्ति-पत्र का समर्थन किया। इस समय से बंगाल कांग्रेस कमेटी में दो पक्ष हो गये, एक सुभाषचन्द्र का और दूसरा सेनगुप्त का, जिससे बंगाल की राजनीति में भी दो दल हो गये। सेनगुप्त को गांधी जी का समर्थन प्राप्त था।

१ जनवरी १९३० से पूर्ण स्वाधीनता

दिसंबर में महात्मा गांधी और पंडित मोतीलाल नेहरू वाइसराय से मिलने गये। इसी समय नई दिल्ली के पास वाइसराय की गाड़ी के नीचे बम फटा और वाइसराय बाल-बाल बच गये। गांधी जी वाइसराय से औपनिवेशिक स्वराज का आश्वासन चाहते थे, लेकिन वाइसरायने इन्कार कर दिया। गांधी जी निराश होकर लौट आये। इस समय देश का वातावरण बड़ा क्षुब्ध था। नौजवान भारतसभाने भगत सिंह और उनके साथियों का काफ़ी प्रचार किया था, उधर जतीन्द्रनाथ दास की मृत्युने देश में काफ़ी सनसनी पैदा कर दी थी। इस वक़्त गांधी जीने तय किया कि यदि ३१ दिसंबर १९२९ तक सरकारने अपना रुख़ नहीं बदला तो १ जनवरी १९३० से वे पूर्ण स्वाधीनता का ऐलान कर देंगे।

लाहौर अधिवेशन

पं. जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसमें शान के साथ पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव पास किया गया। इससे कुछ लैफ़्टविंगर्स भी गांधीजी के पक्ष में आ मिले। अधिवेशन में वाइसराय के दुर्घटना से बच जाने पर उन्हें बधाई देने का प्रस्ताव रक्खा गया जिसका काफ़ी विरोध हुआ। लेकिन गांधीजी के ज़ोर देने से यह प्रस्ताव बहुत ही थोड़े बहुमत से पास हो गया। इसके बाद कौंसिलों के बहिष्कार का प्रस्ताव पास हुआ। लेकिन कांग्रेस के पास कोई ख़ास योजना न थी।

इस मौक़े पर सुभाष बाबू ने एक प्रस्ताव रक्खा कि मज़दूर, किसान और नौजवानों का संगठन कर हिन्दुस्तान में ब्रिटिश सरकार के साथ-साथ अपनी सरकार क़ायम की जाय। लेकिन यह प्रस्ताव पास न हो सका। तत्पश्चात् महात्मा जीने कार्यकारिणी समिति बनाने के लिये १५ व्यक्तियों के नाम पेश किये, इन में सुभाष बाबू और श्रीनिवास ऐयंगर का नाम नहीं रक्खा गया था। अधिवेशन के बाद इन दोनों सज्जनों ने 'कांग्रेस डेमोक्रेटिक पार्टी' नामक एक नये दल की स्थापना की घोषणा की।

जो कुछ भी हो, इस समय जनता में बहुत उत्साह था और देश चाहता था कि कोई आन्दोलन छेड़ा जाय, लेकिन देश का कर्णधार इसके लिये अभी तैयार नहीं था! आगे चल कर बहुत हृदय-अन्वेषण के बाद महात्मा जीने फ़र्वरी १९३० में नमक—सत्याग्रह की योजना पेश की जो एक प्रकार से क़ानून-भंग करने तक ही सीमित रही, और जनता की उमड़ती हुई नई शक्ति का उपयोग कर देशव्यापी उग्र रूप धारण न कर सकी।

[८]

देशव्यापी आन्दोलन (१९३०)

स्वातंत्र्य-दिवस

नूतन वर्ष आशा और विश्वास लेकर आया। जनता लालायित होकर कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की ओर देख रही थी कि देखें स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये क्या-क्या योजनायें बनाई जाती हैं। इस समय की परिस्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए महात्मा जी ने लिखा था—

"सविनय अवज्ञा ही इस समय देश को अव्यवस्था और लुके-छिपे अपराधों से बचा सकती है, क्योंकि इस समय देश में हिंसक दल का ज़ोर है, जो दल व्याख्यानों, प्रस्तावों और परिषदों की परवा न कर ठेठ कार्य में विश्वास रखता है।"

अस्तु, २६ जनवरी को देशभर में स्वाधीनता-दिवस मनाया गया, जिस में बताया गया कि "ब्रिटिश सरकार के अमानुषिक शासन के नीचे रहना मनुष्य और ईश्वर के प्रति द्रोह है। अंग्रेज़ी सरकार ने आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भारत का शोषण किया है, अतएव हम प्रतिज्ञा करते हैं कि अंग्रेज़ी सरकार से असहयोग करके, करबन्दी द्वारा, उत्तेजित किये जाने पर भी अहिंसक रहते हुए इस शासन का ख़ातमा करेंगे।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस से देशभर में बिजली दौड़ गई और जनता महसूस करने लगी कि अब हम पूर्ण स्वतंत्रता के बहुत नज़दीक आ गये हैं। लेकिन इसी समय ३० जनवरी को महात्मा जी ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिस में उन्होंने लिखा कि वे स्वतंत्रता के सार से ही संतुष्ट हो जायेंगे। गांधीजी ने मद्यपान-निषेध, लगान और सैनिक खर्च में कमी, विदेशी, कपड़े पर कर, रुपये की क़ीमत १६ पेंस आदि ११ बातें पेश कीं और कहा कि यदि ये शर्तें पूरी कर दी जाँय तो सविनय अवज्ञा वापिस ले ली जायगी। कहने की आवश्यकता नहीं यह मनोवृत्ति बड़ी आश्चर्य में डालने वाली थी जिस से मालूम होता था कि गांधीजी पूर्ण स्वराज के नाम पर राजनैतिक लेन-देन कर रहे हैं। इन शर्तों में मजदूरों के हित की कोई शर्त नहीं थी, और न किसानों को क़र्ज़ के भार से मुक्त करने की किसी बात की चर्चा।

अहिंसा में धार्मिक विश्वास और पूर्ण स्वराज

फ़र्वरी १९३० में साबरमती में कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक हुई। समिति ने गांधीजी के प्रस्ताव का स्वागत करते हुए निश्चय किया कि जिन लोगों का अहिंसा में धार्मिक विश्वास हो वे पूर्ण स्वाधीनता के लिये सविनय अवज्ञा का आन्दोलन कर सकते हैं।

इस समय लाहौर कांग्रेस के प्रस्तावानुसार कौंसिलों के मेंबरों ने अपने-अपने पदों से स्तीफ़े दे दिये थे। बहु-संख्यक मुसलमान सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा के विरुद्ध थे। स्वयं अलीभाईयों ने उन्हें कांग्रेस के आन्दोलन में भाग लेने को मनाई कर दी थी। लेकिन राष्ट्रवादी मुसलमान और सीमाप्रान्त के पठान कांग्रेस के साथ थे। २७ फ़र्वरी को अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए गांधी जीने 'यंग इंडिया' में लिखा—

"अब की बार मेरी गिरफ़्तारी के बाद निष्क्रिय अहिंसा का स्थान अत्यंत सक्रिय अहिंसा को मिलना चाहिये। अहिंसा में धार्मिक विश्वास रखने वाला कोई भी स्त्री-पुरुष अब अंग्रेजों की गुलामी में न रहेगा। मेरा इरादा आश्रम के कुछ चुने हुए साथियों को लेकर ही आन्दोलन शुरू करने का है।"

गांधीजी ने यह भी कहा कि—"आन्दोलन के अवसर पर हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ न होने देने के लिये पूर्ण प्रयत्न किया जाना चाहिये। फिर भी सविनय अवज्ञा एक बार शुरू हो जाने के बाद बीच में नहीं रोकी जायगी।"

गांधीजी ने २ मार्च को वाइसराय को एक लंबा चौड़ा पत्र लिखा कि वे १२ मार्च को आश्रम के साथियों के साथ अहमदाबाद से रवाना होकर समुद्र-तट पर नमक-क़ानून भंग करने का इरादा कर रहे हैं। गांधीजी ने इस पत्र में लिखा—

"अहिंसा पर मेरा पूर्ण विश्वास है और मैं जान-बूझकर किसी भी प्राणी को दुख नहीं पहुँचाना चाहता। तथा जहाँ मैं ब्रिटिश राज को हिन्दुस्तान के लिये अभिशाप समझता हूँ वहाँ मैं किसी भी अंग्रेज़ या उसके किसी उचित स्वार्थ को नुक़सान नहीं पहुंचाना चाहता। मैं भारतीयों की भांति अंग्रेजों को भी प्यार करता हूँ। अहिंसा द्वारा मैं ब्रिटिश जाति का हृदय-परिवर्तन करना चाहता हूँ। मेरा विश्वास है कि ब्रिटिश सरकार की संगठित हिंसा को शुद्ध अहिंसा ही रोक सकती है। अहिंसा में बड़ी ज़बर्दस्त क्रियात्मक शक्ति है, इसके द्वारा मैं चाहता हूँ कि सरकार की संगठित हिंसा और भारतीय हिंसक दल की बढ़ती हुई असंगठित हिंसा दोनों का मुक़ाबला किया जाय।"

अन्त में समझौते का द्वार खुला रखते हुए गांधीजी ने वाइसराय को लिखा—

"यदि आपने अपनी घोषणा में औपनिवेशिक स्वराज शब्द का प्रयोग उसके माने हुए अर्थ में किया हो तो पूर्ण स्वराज के प्रस्ताव से घबराने की आपको ज़रूरत नहीं, क्योंकि ज़िम्मेवार ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने यह स्वीकार किया है कि औपनिवेशिक स्वराज व्यवहार में पूर्ण स्वराज ही है।"

वाइसराय ने गांधी जी के पत्र का संक्षिप्त उत्तर देते हुए लिखा—"मुझे अफ़सोस है कि आप क़ानून भंग करने जा रहे हैं।"

इस उत्तर को पाकर गांधी जी बड़े निराश हुए और उन्होंने कहा कि मैंने रोटी का सवाल किया था और मिला पत्थर। वास्तव में बात यह थी कि सरकार को इस आंदोलन की विशेष चिन्ता न थी। अधिकारी लोग समझते थे कि इस प्रकार नमक-क़ानून तोड़ने से कुछ नहीं हो सकता। इस वक़्त कुछ अर्ध-योरोपियन अख़बारों ने गांधी जी का मज़ाक़ करते हुए यहाँ तक लिखा था कि औपनिवेशिक स्वराज मिलने तक गांधी जी नमक का पानी उबालते रहेंगे।

डण्डी-कूच और सरकारी दमन

१२ मार्च को गांधी जी अपने साथियों को साथ लेकर डण्डी के लिये चल पड़े। इस कूच में कुल २४ दिन लगे। गुजरात के जिन गाँवों में होकर गांधी जी गुज़रते थे वहाँ उनका शानदार स्वागत होता था, तथा लोगों में अपूर्व उत्साह और जोश भर जाता था। इस अवसर पर गांधी जी ने बताया कि—

" मैंने स्वयं भारत-सम्राट् की रक्षा के लिये परमात्मा से प्रार्थना की है, लेकिन 'भीख माँगने' की राजनीति में अब मेरा विश्वास नहीं रहा। राजद्रोह अब मेरा धर्म हो गया है। हम किसी को मारना नहीं चाहते लेकिन इस शासन का ख़ातमा करना अपना धर्म समझते हैं।"

५ अप्रैल को डण्डी पहुँच कर महात्मा जी ने समुद्र-स्नान किया और फिर नमक बनाकर नमक-क़ानून भंग किया। बस देशभर में लोग तरह तरह से नमक बनाने लगे, राजद्रोहात्मक साहित्य पढ़ा गया, विदेशी वस्त्र और मादक द्रव्यों का बहिष्कार किया गया, और पिकेटिंग जारी हो गया। इस से महिला समाज में बड़ी आश्चर्यजनक जागृति हुई। बड़े-बड़े घरानों की महिलायें मैदान में आ गईं, और विदेशी वस्त्र तथा शराब की दुकानों पर धरना दे कर जेल जाने लगीं। सरकार एक दम घबरा उठी।

यह किसी ने न सोचा था कि इतनी जल्दी आन्दोलन इतना उग्र रूप धारण कर लेगा। बस एक के बाद एक आर्डिनेन्स निकलने लगे, राष्ट्रीय अखबारों का प्रकाशन बन्द हो गया, कांग्रेस कमेटियाँ ग़ैर-क़ानूनी घोषित कर दी गईं, और उनका सब पैसा ज़ब्त कर लिया गया। उधर लुक-छिपकर काम होने लगा, गुप्त चन्दे इकट्ठे किये जाने लगे, बुलेटिन निकाले गये और गुप्त रेडियो चल पड़े। सी. पी. (मध्यप्रान्त) और बंबई प्रेसीडेन्सी आदि स्थानों में जंगल-सत्याग्रह शुरू हो गया, और युक्तप्रान्त में करबन्दी का आन्दोलन चल पड़ा।

सरकार ने लगभग १ लाख व्यक्तियों को पकड़कर जेल में डाल दिया। गुजरात में किसानों के ऊपर बड़े-बड़े जुल्म ढाये गये, बंबई आदि स्थानों में बड़े दर्दनाक लाठीचार्ज हुए, जेलों के अन्दर क़ैदियों को बुरी तरह पीटा गया, और अनेक जगह गोलीबार हुआ। पेशावर में २३ अप्रैल को बड़े ज़ोर की गोली चली जिसमें एक दिन में कई सौ आदमी खतम हो गये। गढ़वाली सिपाहियों ने चन्द्रसिंह गढ़वाली के नेतृत्व में पेशावर की शान्त और निहत्थी जनता पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। इसपर सिपाहियों से उनके हथियार छीन लिये गये, और कोर्ट-मार्शल करके उन्हें बड़ी-बड़ी सजायें दी गई। इनमें चन्द्रसिंह गढ़वाली का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्हें १८ साल की कैद की सज़ा दी गई। २५ अप्रेल से लगाकर ४ मई तक

शहर पूरी तरह से जनता के अधिकार में आ गया था। यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि गोलमेज परिषद् के अवसर पर गांधी जीने एक फ्रांसीसी के साथ मुलाक़ात करते हुए इन गढ़वाली सिपाहियों को अपने अधिकारियों की हुकुम-उदूली करने के लिये जिम्मेवार बताते हुए दोषी ठहराया था।

अस्तु, सरकार ने जनता का दमन करने में कुछ न उठा रक्खा। स्वयं गांधी जीने इस दमन की निन्दा करते हुए वाइसराय को लिखा था—

"मुझे आशा थी कि सत्याग्रहियों के साथ सरकार सभ्य तरीक़ों से पेश आयेगी, लेकिन मुझे मालूम हुआ कि हमारे सैनिकों पर पाशविक ही नहीं बल्कि निर्लज्ज तरीक़ों से प्रहार किया गया है। ऐसे हमले इक्के-दुक्के नहीं हुए बल्कि देशभर में वही नीति अख़्तियार की गई है। सत्याग्रहियों की हड्डियां चूर-चूर कर के और उनके गुह्य अंगों को दबा-दबा कर उनके हाथ से नमक छीना-गया है। बड़ी निर्दयता से प्रहार कर उनके हाथ से झंडे छीने गये हैं, धान के खेत जला कर तहस-नहस कर दिये गये हैं और साग की मंडियाँ नष्ट कर दी गई हैं।"

पुलिस के इन बर्बरतापूर्ण अत्याचारों का वर्णन गांधी जी की प्रमुख शिष्या मिस स्लेड नामक अंग्रेज़ी महिला ने १२ जून, १९३० के 'यंग इडिया' में, तथा मिस्टर ब्रैलिसफोर्ड ने १२ जनवरी १९३१ के 'मैंचेस्टर गार्डियन' में किया है।

चटगाँव के शस्त्रागार पर धावा

अप्रैल में बड़ी सनसनीखेज़ख़बरें आईं। पं. मदनमोहन मालवीय तथा श्री विट्ठलभाई पटेल ने असेंबली से अपना स्तीफ़ा दे दिया। कुछ समय बाद दूसरी ख़बर आई कि श्री सूर्यसेन के नेतृत्व में कुछ क्रांतिकारी नौजवानों ने मिल कर चटगाँव के शस्त्रागार पर धावा बोल दिया। इन

युवकों ने शस्त्रागार के पहरेदारों को मार कर शस्त्रागार पर २-३ दिन तक कब्ज़ा रक्खा, और उसके सब शस्त्र निकाल लिये। आखिर में इन युवकों को पकड़ लिया गया: कुछ को फांसी दे दी गई, और कुछ को आजन्म कारावास की सज़ा। इन में बंगाल की कल्पनादत्त भी थीं, जिन की उम्र उस समय केवल १८ साल की थी! इसी समय सीमाप्रांत में अफ़रीदियों ने अंग्रेज़ सरकार के विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी।

वाइसराय के नाम दूसरा पत्र—गांधीजी की गिरफ्तारी

वातावरण काफ़ी क्षुब्ध हो रहा था। गांधीजी ने वाइसराय को दूसरा पत्र लिखा कि अब की बार मैं धरसना के नमक के कारखाने पर अधिकार करने जा रहा हूँ, और आप मुझे तीन प्रकार से रोक सकते हैं—(१) नमक-कर उठा कर, (२) मुझे और मेरे साथियों को गिरफ़्तार कर, या (३) अपना गुण्डापन दिखा कर।

लेकिन सरकार ने अब की बार अधिक समय तक प्रतीक्षा करना मुनासिब न समझा, और महात्माजी को रवाना होने के पेश्तर ही ५ मई को गिरफ्तार कर, १८२७ के बंबई रेगूलेशन २५ के अनुसार मुक़दमा चलाये बिना ही उन्हें जेल में डाल दिया। गांधीजी की गिरफ्तारी का हाल सुनते ही जनता में जोश उमड़ पड़ा। जगह-जगह हड़तालें हुईं, सभाओं तथा प्रदर्शनों का तांता लग गया। मज़दूर अपना-अपना काम छोड़कर कारखानों से बाहर आ गये, और विदेश में रहने वाले भारतीयों ने भी इस हड़ताल में पूरा हिस्सा लिया। शोलापुर में भीड़ ने पुलिस की चौकियाँ जला दीं, और सरकारी इमारतों पर राष्ट्रीय झंडा फहरा कर स्वाधीनता-दिवस मनाया। लेकिन दमन भी उतने ही ज़ोरों से किया गया। गोरी पलटन ने आकर जनता पर बड़े-बड़े अत्याचार किये, शहर में मार्शल लॉ घोषित कर दिया गया, और लोगों को बड़ी-बड़ी लंबी सज़ायें दी गईं।

कुछ भी हो, हालत इतनी खतरनाक हो रही थी कि यहाँ के योरोपियन बहुत घबरा उठे थे। इस संबंध में ५ जोलाई के 'स्पैक्टेटर' नामक अखबार में 'बंबई का एक पत्र' प्रकाशित हुआ था, जो पढ़ने लायक है।

समझौते की बातचीत

इधर ७ जून को साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई जिसका एक स्वर से भारतवासियों ने विरोध किया। इस समय इंग्लैंड के 'डेली हेराल्ड' नामक पत्र के प्रतिनिधि मिस्टर जॉर्ज स्लोकोम्ब हिन्दुस्तान भेजे गये और उन्होंने १९-२० मई को यरवदा जेल पहुँच कर गांधीजी से मुलाक़ात की। इस मुलाक़ात में उन्होंने जानना चाहा कि गांधीजी किन शर्तों पर सविनय अवज्ञा के आन्दोलन को बन्द कर सकते हैं। गांधी जी ने निम्नलिखित शर्तें पेश कीं:—

(१) गोलमेज परिषद् को ऐसा विधान बनाने का अधिकार दिया जाय जिससे भारतवर्ष को स्वाधीनता का सार मिल जाय।

(२) नमक-कर उठा देने तथा शराब और विदेशी वस्त्र की बन्दी के संबंध में संतोष दिलाया जाय।

(३) सविनय अवज्ञा बन्द होते ही तमाम राजनैतिक क़ैदी छोड़ दिये जाँय।

(४) अन्य जो बातें वाइसराय के नाम गांधीजी के पत्र में लिखी गई हैं, उनकी चर्चा बाद में कर ली जाय।

मिस्टर स्लोकोम्ब की दूसरी मुलाक़ात २० जून को पं. मोतीलाल नेहरू से हुई। पं. जीने महात्माजी का समर्थन किया। तत्पश्चात् मिस्टर स्लोकोम्ब ने एक विज्ञप्ति-पत्र सर तेजबहादुर सप्रू और मिस्टर एम. आर. जयकर के पास भेजा कि वे लोग देश में शान्ति स्थापित करने का काम अपने ज़िम्मे लें। ये दोनों सज्जन वाइसराय की अनुमति से जेल में

जाकर गांधी जी तथा पं. मोतीलाल और पं. जवाहरलाल नेहरू से मिले। दोनों नेहरूओं को नैनी जेल से गांधीजी से मुलाक़ात कराने यरवदा जेल लाया गया। आखिर में १५ अगस्त को जेल से नेताओं का एक सम्मिलित बयान प्रकाशित हुआ जिस में कहा गया कि यदि सरकार निम्न शर्तें स्वीकार कर ले तो समझौता हो सकता है :—

(१) भारत को अधिकार होगा कि वह जब चाहे ब्रिटिश सरकार से अपना संबंध विच्छेद कर ले।

(२) जनता की प्रतिनिधि राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की जाय, जिसके अधिकार में रक्षा और आर्थिक नियंत्रण हों।

(३) भारत के ऋण के संबध में स्वतंत्र पंचायत बैठा कर निर्णय का अधिकार दिया जाय।

यह बयान २८ अगस्त को वाइसराय के पास भेजा गया लेकिन कोई समझौता न हो सका।

लंदन में गोलमेज परिषद्

१२ नवबर को लंदन में बड़ी शान के साथ रैम्जे मेकडोनल्ड की अध्यक्षता में गोलमेज परिषद् का उद्घाटन हुआ। इस में सब मिलाकर ८६ मेंबरों को निमंत्रित किया गया था:–१६ ब्रिटिश पार्टी के, १६ भारत की रियासतों के और ५७ ब्रिटिश भारत के। कांग्रेस पार्टी इस में शामिल नहीं हुई थी। परिषद् में शासन–विधान की सफलता के लिये चर्चा की गई, और बाद में भिन्न–भिन्न विषयों को लेकर भिन्न–भिन्न उपसमितियाँ बना दी गई। इस परिषद् में फैडरेशन (संघ–शासन) की योजना तैयार की गई, जिससे भारतीय जनता की चेतना को कुचलने का प्रयत्न किया गया। १६ जनवरी १६३१ को यह परिषद् अनियत समय के लिये स्थगित कर दी गई।

[९]

गांधी-इरविन समझौता (१९३१)

समझौते की बातचीत

सन् ३० के अन्त में और ३१ के आरंभ में एक बार फिर कांग्रेस और सरकार के बीच समझौते का अवसर आया। लंदनकी गोलमेज परिषद में गांधीजी की अनुपस्थिति से ब्रिटिश राजनीतिज्ञ परिषद् की निस्सारता को भली भाँति भाँप गये थे। इधर दूरदर्शी वाइसराय लॉर्ड इरविन "ब्रिटिश सरकार के पुलिसमैन" महात्मा गांधी के रहते हुए सरकार और कांग्रेस में कुछ न कुछ समझौता कर लेना चाहते थे।

इस समय तमाम देश में हलचल मची हुई थी। गुजरात, संयुक्तप्रान्त तथा बंगाल के कुछ हिस्सों में करबन्दी का आन्दोलन चल रहा था, देश भर में अंग्रेज़ी माल का बहिष्कार और सविनय अवज्ञा ज़ोर पर थे, बंगाल में क्रांतिकारी नवयुवक ज़ोर पकड़ रहे थे, तथा सीमाप्रांत के लोग गांधी तथा अब्दुलगफ़ार खाँ को जेल से छुड़ाने के लिये तुले हुए थे।

इस समय लंदन में रैम्ज़े मैकडोनल्ड की गोलमेज परिषद् में स्पीच होने के बाद लॉर्ड इरविन लैजिस्लेटिव असेंबली में कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करने की अपील की, जिसके फल स्वरूप महात्मा गांधी और कार्यकारिणी के सदस्य बिना शर्त जेल मे रिहा कर दिये गये।

इस वक़्त लन्दन गोलमेज परिषद् से लौटकर आने वाले लिबरल नेताओं ने गांधी जी को 'केबल' से सूचना दी कि हम लोगों के हिन्दुस्तान पहुँचने तक सरकारी घोषणा के विषय में वे अपना कोई निर्णय न दें। गांधीजी जेल से छूटते ही सीधे पं. मोतीलाल जी से मिलने इलाहाबाद आये, जहाँ वे बहुत सख़्त बीमार पड़े हुए थे। यहाँ ३१ जनवरी और १ फ़र्वरी को कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक हुई। ६ फ़र्वरी को तेजबहादुर सप्रू आदि लिबरल नेता भी हिन्दुस्तान पहुँच गये थे। ये लोग सीधे इलाहाबाद आये और इन्होंने गांधी जी से कहा कि वाइसराय से बिना मुलाक़ात किये सरकार का प्रस्ताव अस्वीकार न करें। १६ फ़र्वरी को महात्माजी दिल्ली जाकर वाइसराय से मिले। कार्यकारिणी के अन्य सदस्य भी उनके साथ गये, एक पं. मोतीलाल साथ न जा सके थे। दुर्भाग्यवश उन्होंने इसी समय अपनी लोकयात्रा समाप्त की।

समझौते की बातचीत शुरू हो गई। १५ दिन के विचार-विनिमय के बाद ४ मार्च को समझौते की शर्तें पेश की गईं। लेकिन गांधी जी ने यह पहले ही कह दिया था कि वे कार्यकारिणी समिति से बिना पूछे कुछ नहीं कर सकते। अगले दिन कार्यकारिणी समिति की सलाह से गांधी जी ने गांधी-इरविन पैक्ट पर दस्तख़त कर दिये। पं. जवाहरलाल ने इस समझौते के ख़िलाफ़ चूं तक न की! बस समझौता हो गया और आन्दोलन बन्द कर दिया गया! लेकिन इससे देशभर में कुहराम मच गया। इस अवसर पर पं. जवाहरलाल नेहरू ने अपने वक्तव्य में कहा कि वास्तव में मैं समझौते के पक्ष में न था, फिर भी एक आज्ञाकारी सिपाही की तरह मैंने गांधी जी की आज्ञा का पालन किया है। समझौते की शर्तें निम्नलिखित थीं:—

गांधी जी ने कांग्रेस की ओर से निम्नलिखित बातें मान्य कीं:—

१) सविनय अवज्ञा के आन्दोलन को बन्द करना।

(२) आगामी गोलमेज परिषद्में भाग लेना जिसमें (अ) फेडरेशन, (आ) उत्तरदायित्व और (इ) संरक्षण की बुनियाद पर, जो भारत के हित की दृष्टि से आवश्यक हैं, विधान-संबंधी प्रश्न पर विचार होगा ।

(३) पुलिस की ज़्यादतियों के संबंध में सार्वजनिक जाँच का आग्रह न करना । वाइसराय ने सरकार की ओर से निम्न बातें मान्य कीं:—

(१) अहिंसात्मक आन्दोलन के सब क़ैदियों को रिहा कर देना ।

(२) सरकार द्वारा जब्त की हुई जमीन-जायदाद लौटा देना बशर्ते कि उसे सरकार ने बेच न दिया हो या नीलाम न कर दिया हो ।

(३) सविनय अवज्ञा के आन्दोलन के सिलसिले में जो विशेष क़ानून जारी किये गये हैं, उन्हें वापस ले लेना ।

(४) नमक-क़ानून में कोई ख़ास तबदीली नहीं की जा सकती । लेकिन जिन स्थानों में नमक बनाया जाता है, उनके आसपास रहने वाले लोग वहाँ से नमक ले सकते हैं ।

(५) शराब, अफ़ीम और विदेशी कपड़ों की दुकानों पर शान्तिपूर्ण पिकेटिंग किया जा सकेगा लेकिन ब्रिटिश माल के बहिष्कार को राजनैतिक शस्त्र के तौर पर काम में न लाया जाय ।

समझौते से असंतोष

समझौते की इन शर्तों को पढ़ कर थोड़ी राजनीति समझने वाले लोग भी निराशा का अनुभव कर रहे थे । समझौता क्या यह जनता के वीरत्व और बलिदान की करारी हार थी, विशेष कर उस समय जब कि जनसमूह की आन्दोलन के लिये बड़े जोर की तयारियाँ थीं । वस्तुतः इस से कांग्रेस की नमक-कर रद करने तक की शर्त न पूरी हुई थी । आन्दोलन

बन्द कर दिया गया था, और कांग्रेस उसी गोलमेज परिषद् में शरीक होने जा रही थी जिसका वह बहिष्कार कर चुकी थी। जैसा ऊपर कहा जा चुका है इस परिषद् में 'भारतीय उत्तर दायित्व' के साथ फैडरेशन की चर्चा होने वाली थी, लेकिन भारत के हित के लिये 'संरक्षण' को समय पर काम में लाने के लिये अलग रख छोड़ा था; इस से देखा जाय तो उत्तर दायित्व का कोई अर्थ ही नहीं रह गया था। इसी तरह आर्डिनेन्स अवश्य वापिस लिये जा रहे थे, और राजनैतिक क़ैदी भी छोड़े जा रहे थे, लेकिन 'हिंसा' के क़ैदी, मेरठ षड्यंत्र के क़ैदी, मज़दूरों की हड़तालों के क़ैदी, तथा गढ़-वाली सिपाही जेलों में पड़े सड़ रहे थे! ब्रिटिश कपड़े का बहिष्कार राजनैतिक शस्त्र के तौर पर काम में नहीं लाया जा सकता था, तथा पुलिस की ज़्यादतियों की जाँच करने की बात टाल दी गई थी!

करांची कांग्रेस

करांची में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन की तैयारियाँ हो रही थी। सरदार पटेल अध्यक्ष चुने गये। राइटविंग के नेता करांची पहुँच कर गांधी-इरविन समझौते को स्वीकार कराने की फ़िकर में थे। लैफ़्टविंग के नेता समझौते के पक्ष में न थे। इसी समय ८ मार्च को सुभाष बाबू अलीपुर सेंट्रल जेल से छूट कर आये। वे जानते थे कि अधिकतर राजनैतिक क़ैदी समझौते के विरुद्ध हैं, लेकिन उन्हें यह भी विश्वास था कि समझौता होकर रहेगा। ऐसी दशा में यदि समझौते का विरोध किया जाता है तो कांग्रेस में फूट पड़ने का डर था। अतएव सुभाष बाबू बबई जाकर महात्मा जी से मिले। गांधीजीने आश्वासन दिया कि वे कोई ऐसा कार्य नहीं करेंगे जिससे लाहौर में घोषित पूर्ण स्वाधीनता के मार्ग में कोई बाधा उपस्थित हो, और वे अन्य क़ैदियों को भी छुड़ाने का प्रयत्न करेंगे।

भगतसिंह और उनके साथियों को फांसी

अचानक खबर आई कि लाहौर षड्यंत्र केस में सरकारने भगतसिंह और उनके साथियों को फांसी देने का निश्चय कर लिया है। महात्माजी पर ज़ोर डाला गया कि वे इन नौजवानों को बचायें। गांधी जीने इसके लिये प्रयत्न भी बहुत किया, वाइसराय से उन्होंने यहाँ तक कहा कि कम से कम कांग्रेस अधिवेशन तक इस सज़ा को स्थगित कर दिया जाय, लेकिन कोई असर न हुआ। सुभाष बाबू तो यहाँ तक तैयार थे कि यदि सरकार इस बात के लिये रज़ामन्द न हो तो दिल्ली समझौते को भी तोड़ा जा सकता है, लेकिन गांधी जी इसके लिये राज़ी न हुए। फांसी की सजा रद्द करने के लिये बहुत से लोगोंने वाइसराय के पास अर्ज़ी भी भेजी, तथा वाइसराय ने गांधी जी से सज़ा को स्थगित करने के लिये कहा भी था, लेकिन कांग्रेस अधिवेशन के मौक़े पर यकायक भगतसिंह और उनके साथियों को २३ मार्च की रात को फांसी दे दी गई! कांग्रेस-नगर शोक-सागर में मग्न हो गया। नौजवानों ने काले झंडों से गांधी जी का स्वागत किया और उन्हें काले फूल और काली मालायें भेंट दी गईं।

२६ मार्च को कांग्रेस का खुला अधिवेशन हुआ। जो लोग दिल्ली समझौते के पक्ष में थे उन्हें चिन्ता थी कि भगतसिंह के मामले को लेकर कहीं कांग्रेस में दलबन्दी न हो जाय, लेकिन राइटविंग की ओर से इसके लिये काफ़ी तैयारियाँ की गई थीं। इस समय सुभाषचन्द्र आदि लैफ़्टविंग के नेताओं ने सोचा कि केवल समझौते का विरोध कर देने मात्र से काम न चलेगा, सरकार के विरुद्ध कोई तात्कालिक आन्दोलन भी छेड़ना चाहिये; लेकिन ऐसा करने से कांग्रेस में दलबन्दी होती थी। इन सब बातों को सोचकर सुभाष बाबू ने तय किया कि समझौते का विरोध नहीं किया जाना ही ठीक है। जो कुछ भी हो, यह स्पष्ट था कि लोग

आम तौर से समझौते के पक्ष में नहीं थे। इस अवसर पर एक डेलीगेट ने तो यहाँ तक कह दिया था कि यदि गांधीजी के स्थान पर अन्य कोई व्यक्ति समझौता स्वीकार करनेवाला होता तो उसे उठाकर समुद्र में फेंक दिया जाता।

अस्तु, अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता के स्थान पर औपनिवेशिक स्वराज का समर्थन किया गया, तथा राजनैतिक हिंसा की निन्दा करते हुए सरदार भगतसिंह और उनके साथियों के साहस और आत्मत्याग की प्रशंसा की गई। कहना न होगा नवयुवकों द्वारा 'राजनैतिक हिंसा की निन्दा' का विरोध किया गया। इस अवसर पर सरदार भगतसिंह के पिता को बुलाकर कांग्रेस-नेताओं के पक्ष का समर्थन कराया गया।

नवयुवकों द्वारा समझौते का विरोध

इस अवसर पर करांची में सुभाष बाबू की अध्यक्षता में नौजवान भारत-सभा का अधिवेशन हुआ। सुभाष बाबू ने कहा कि कांग्रेस का बहिष्कार करने की मनोवृत्ति रखने के बजाय नवयुवकों को चाहिये कि वे उसमें घुसकर सत्ता प्राप्त करें और अपने विचारों का प्रचार करें। इस सभा में गांधी-इरविन समझौते का जोरदार विरोध किया गया, और नौजवान सभा की ओर से दिल्ली समझौते के विरुद्ध एक प्रस्ताव पास किया गया।

फिर गोलमेज परिषद्

करांची कांग्रेस ने दिल्ली समझौते को मान्य रक्खा। इसके पश्चात् २ अप्रैल को कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने गांधी जी को कांग्रेस का एक मात्र प्रतिनिधि बनाकर गोलमेज परिषद् लन्दन में भेजने का प्रस्ताव किया। लेकिन गांधी जी यह अच्छी तरह समझते थे कि हिन्दु-मुसलिम समस्या के बिना सुलझे परिषद् में जाना बेकार है। इस संबंध में महात्मा जी ने एकाध

बयान भी प्रकाशित किये। इसके बाद अप्रैल में दिल्ली में साम्प्रदायिक मुसलमानों की कान्फरेंस बुलाई गई जिसमें मुसलमानों की ओर से मिस्टर जिन्ना की शर्तें रक्खी गईं।

इस मौके पर सुभाष बाबूने गांधी जी से कहा कि राष्ट्रवादी हिन्दू और मुसलमानों के बीच जो समझौता हो वे उसी को गोलमेज परिषद् में उपस्थित करें, तथा साम्प्रदायिक मुसलमानों की बात के ऊपर कांग्रेस को कोई ध्यान न देना चाहिये। सुभाष बाबू ने पृथक्-निर्वाचन का भी विरोध किया। जब यह चर्चा हो रही थी, उसमें राष्ट्रवादी मुसलमान डॉ. अंसारी तथा मिस्टर शेरवानी भी आकर शामिल हो गये। इन लोगों ने भी पृथक्-निर्वाचन का विरोध किया और कहा कि यदि गांधीजी साम्प्रदायिक मुसलमानों के लिये पृथक् निर्वाचन का समर्थन करेंगे तो वे लोग उसका विरोध करेंगे। यही कारण है कि आगे चलकर गांधीजी को गोलमेज परिषद् में इस प्रश्न को लेकर बड़ी विचित्र परिस्थिति का सामना करना पड़ा था। इस समय गांधी जीने एक बयान देते हुए कहा कि राष्ट्रवादी मुसलमानों का विरोध होने के कारण वे साम्प्रदायिक मुसलमानों की माँग को स्वीकार नहीं कर सकते।

सरकार की ओर से समझौता भंग

१७ अप्रैल को लॉर्ड विलिंग्डन हिन्दुस्तान पधारे और अगले दिन इरविन साहब इंग्लैंड प्रयाण कर गये। नये वाइसराय के आते ही अधिकारियों का रुख बदलने लगा और जहाँ-तहाँ समझौते की उपेक्षा की जाने लगी। गुजरात के किसानों को अपनी ज़ब्त की हुई ज़मीन वापिस करने में बड़ी दिक़्क़तें उठानी पड़ीं, संयुक्तप्रान्त के किसान महात्माजी के कहने पर भी लगान अदा न कर सके। बंगाल की हालत और भी बुरी थी। बिना मुक़दमा चलाये लोग पकड़ कर जेलों में ठूँसे जा रहे थे, षड़यंत्र केस

तैयार किये जा रहे थे, और आन्दोलन के लगभग १००० क़ैदियों को अभी रिहा नहीं किया गया था।

जौलाई में कांग्रेस को यह निश्चित रूप से पता लग चुका था कि सरकार समझौते पर अमल नहीं कर रही है। इस प्रकार के अभियोगों की एक सूची बनाकर स्वयं महात्माजी ने शिमला में भारत के गृहसचिव को भेजी थी। वस्तुतः इन सब बातों से महात्माजी का लन्दन जाकर गोलमेज परिषद् में शरीक होना असंभव हो रहा था। लेकिन सरकार चाहती थी कि जैसे भी हो गांधीजी लन्दन अवश्य आयें, और वहाँ उनको नीचा दिखाया जाय। गांधीजी चाहते थे कि सरकार की ओर से जो समझौता भंग किया गया है, उसकी पंचों द्वारा निष्पक्ष रूपसे जाँच की जाय, लेकिन वाइसराय इसके लिये क्यों तैयार होने वाले थे? आख़िर में गांधीजी को किसी तरह लंदन जाने के लिये राज़ी किया गया और महात्माजी परिषद् के लिये रवाना हो गये।

[१०]

गांधीजी गोलमेज परिषद् में (१९३१)

बकिंघम महल में

पाँव में चप्पल, लगोटी और एक शाल ओढ़े महात्माजी लंदन को चल दिये। चलते समय वाइसराय को उन्होंने विश्वास दिलाया कि वे लंदन पहुँचकर समझौते के लिये पूर्ण प्रयत्न करेंगे। ११ सितबर को महात्माजी मार्सेलीज़ पहुँचे। वहाँ से महात्माजी के प्रशंसक मित्र उन्हें लन्दन लिवा ले गये, जहाँ फ्रेन्ड्स हाउस में उनका स्वागत किया गया। लंन्दन में महात्माजी गरीबों की वस्ती में एक अंग्रेज महिला के घर ठहरे, और अपनी उसी पोशाक में बकिंघम पैलेस में पहुँचकर जॉर्ज पंचम से हाथ मिलाया।

गोलमेज परिषद् की बैठकें

१२ सितंबर से १ दिसंबर के दर्म्यान गोलमेज परिषद् के अधिवेशनों में महात्माजी सब मिलाकर १२ बार बोले :—२ बार खुले अधिवेशन में, ८ बार फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी के सामने और २ बार अल्पसंख्यक कमेटी के सामने। गांधीजी ने कहा—

"पहले मैं अपने को ब्रिटिश सरकार की प्रजा मानने में गौरव समझता था, लेकिन अब मैं बागी हो गया हूँ, तथा अब मैं ब्रिटिश सरकार के

राष्ट्र-समूह (कॉमनवेल्थ) में हिस्सेदारी के आधार पर ही उसका नागरिक बन सकता हूँ।"

दो समान राष्ट्रों की भागीदार योजना पर ज़ोर देते हुए महात्माजी ने बताया कि केन्द्रीय उत्तरदायित्व, संघ-व्यवस्था तथा भारतीय हित की दृष्टि से संरक्षण-ये तीनों भारतीय ध्येय से बहुत कम हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि कि लन्दन पहुँच कर महात्मा जी समझ गये कि गोलमेज परिषद् भानमती का एक पिटारा है, और उसके प्रतिनिधि हिन्दुस्तान में राजनैतिक और सामाजिक उन्नति के सब से ज़्यादा विरोधी फ़िरक़ों के नुमायन्दे हैं, जो सरकार द्वारा नामज़द किये गये हैं। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय विचारवाले मुसलमान परिषद् में मौजूद ही नहीं थे।

अस्तु, सरकार की ये सब साजिशें समझ कर महात्मा जी ने किसी ठोस प्रस्ताव के लिये बातचीत चलाना चाही लेकिन इस समय उनके सामने अल्पसंख्यक कमेटी को लाकर खड़ा कर दिया गया। इस कमेटी के सामने ८ अक्टूबर को महात्मा जी की पहली तक़रीर हुई। इसमें उन्होंने बताया कि इस परिषद् का मुख्य उद्देश्य शासन-विधान का निर्माण है, केवल साम्प्रदायिक समस्या को हल करने के लिये यह परिषद् नहीं बुलाई गई। कहना न होगा कि जातीय प्रश्न पर परिषद् में कोई निर्णय नहीं हो सका, और इसे महात्मा जी ने बड़े दुख और शरम के साथ स्वीकार किया।

महात्मा जी ने साफ़-साफ़ शब्दों में कहा कि इस परिषद् के सदस्य देश के प्रतिनिधि नहीं हैं, बल्कि सरकार के चुने हुए लोग हैं। अतएव यह कहना कठिन है कि हमें इस परिषद् से क्या मिल सकता है। इसलिये यह कमेटी अनिश्चित समय के लिये स्थगित की जाती है, और हमें शीघ्र ही शासन-निर्माण की तैयारी करनी चाहिये। इस मौक़े पर गांधी जीने इस मामले को निष्पक्ष जाँच करने के लिये एक कमेटी नियुक्त करने

की सलाह दी। वस्तुत: अल्पसंख्यक कमेटी का अभिप्राय भारत के प्रतिनिधियों में गड़बड़ करके उनके सामने साम्प्रदायिक समस्या को लाकर खड़ा कर देने के सिवाय और कुछ नहीं था। इस बात से महात्मा जी को दिल्ली में ही आगाह कर दिया गया था।

१३ नवंबर को रैम्ज़े मैकडोनल्ड की अध्यक्षता में अल्पसंख्यक कमेटी की दूसरी मीटिंग हुई। अध्यक्ष महोदय ने कहा कि अल्पसंख्यक जातियों का समझौता ११॥ करोड़ लोगों को मान्य है।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि १३ नवंबर से पहले अल्पसंख्यक जातियों ने आपस में मिलकर एक समझौता किया था, जिसे सरकार तथा परिषद् के अंग्रेज़ सदस्यों का अनुमोदन प्राप्त था। सिक्ख इस समझौते में शामिल नहीं थे। इस मौके पर गांधी जी को लक्ष्य करते हुए रैम्ज़े मैकडोनल्ड ने कहा कि जातीयता के प्रश्न को सुलझाये बिना विधान-निर्माण कैसे हो सकता है? लेकिन इन दोनों बातों का उत्तर देते हुए गांधी जीने कहा—

"कांग्रेस केवल ब्रिटिश सरकार की ही नहीं बल्कि समस्त भारत की ८५ या ९५ फ़ी सदी जनता का प्रतिनिधित्व करती है। तथा जैसे मैं पहले कह आया हूँ, हिन्दू, मुसलमान और सिक्खों द्वारा मान्य कोई भी समझौता कांग्रेस को मान्य होगा लेकिन अन्य किसी अल्पसंख्यक जाति के लिये कांग्रेस कोई ख़ास रिजर्वेशन या ख़ास निर्वाचन की ताईद न करेगी।"

गांधीजीने यह भी कहा कि अछूतों की ओर से पेश किया गया कोई भी दावा उनके लिये बड़ा तीक्ष्ण घाव होगा, क्योंकि वे अस्पृश्यों के पृथक् जाति के रूप में वर्गीकरण किये जाने के बिलकुल विरुद्ध हैं।

२३ अक्टूबर को महात्माजी फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी के समक्ष सुप्रीम कोर्ट के विषय में बोले। १७ नवंबर को सेना तथा वैदेशिक मामलों पर पूर्ण अधिकार के विषय में उन्होंने भाषण दिया। १९ नवबर को संरक्षण

का विरोध करते हुए गांधीजीने कहा कि कांग्रेस उत्तरदायी शासन से आने वाली सब प्रकार की ज़िम्मेवारियों को, जिन में रक्षा का पूर्ण अधिकार और वैदेशिक मामले तक आ जाते हैं, अपने कंधों पर उठा सकती है। २५ नवंबर को गांधीजी ने भारतीय आय-व्यय के ऊपर पूर्ण अधिकार की चर्चा करते हुए रुपये की क़ीमत १८ पेंस किये जाने पर ज़ोर दिया। आख़िर में ३० नवंबर को खुले अधिवेशन में भाषण करते हुए गांधीजी ने कहा कि वास्तव में देखा जाय तो देश की सच्ची प्रतिनिधि कांग्रेस है, लेकिन यहाँ उसे अन्य पार्टियों की तरह एक पार्टी मानकर उसका अविश्वास किया जा रहा है; मैं आप को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि कांग्रेस को देश की सब जातियों की ओर से बोलने का अधिकार है।

साम्प्रदायिक प्रश्न के विषय में गांधीजी ने कहा कि जब तक भारत में विदेशी राज क़ायम है, तब तक यह प्रश्न कभी हल नहीं हो सकता। राष्ट्र की माँग के बाबत उन्होंने कहा कि मैं अंग्रेज़ों का एक साझेदार होना चाहता हूँ, लेकिन मुझे उतनी स्वतंत्रता मिलनी चाहिये जितनी कि अंग्रेज़ों को होती है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि सम्मानपूर्ण समझौते के लिये अत्यन्त प्रयत्न-शील रहते हुए भी गांधीजी को परिषद् से ख़ाली हाथ लौटना पड़ा। १ दिसंबर को परिषद् का अधिवेशन समाप्त हो गया। गांधी जीने प्रधान मंत्री, रैम्ज़े मेकडानल्ड को धन्यवाद देते हुए कहा कि हम लोगों के रास्ते अलग-अलग हैं, दिशायें भिन्न हैं, और हमारा संग्राम अवश्यंभावी है, जिसका संचालन बिना किसी द्वेषभाव के किया जायगा। लन्दन से रवाना होते वक़्त गांधी जीने प्रेस को वक्तव्य दिया कि देशव्यापी सविनय अवज्ञा के आन्दोलन का इस समय प्रश्न ही नहीं उठता, हाँ सरकार के अन्याय और अत्याचारपूर्ण बरताव के विरोध में बंगाल, संयुक्तप्रान्त, सीमाप्रान्त आदि प्रान्तों में आन्दोलन छिड़ सकता है।

सच पूछा जाय तो महात्मा जी का लन्दन जाना ही फ़िज़ूल था। उनके लन्दन जाने की योजना बनाते समय उस पर किसीने गंभीरता से विचार ही नहीं किया था। और तो क्या उनके साथ ऐसा कोई व्यक्ति तक न था, जो उन्हें सलाह-मश्वरा दे सके। लन्दन भी गांधी जी ऐन मौके पर ही पहुँच सके। इसके विपरीत सरकार ने लन्दन में अपनी सब योजनायें पहले से गढ़ कर रक्खी थीं, जिनका पता गांधी जी को लन्दन पहुंचकर ही लग सका। इसके सिवाय, यदि गोलमेज परिषद् में जाना ही था तो महात्मा जी सन् ३० में ही उसमें जा सकते थे, और जो शर्तें उन्हें मार्च १९३१ में मिलीं, वे शर्तें उन्हें अगस्त १९३० में मिल सकती थीं। उस समय कांग्रेस को परिषद् में आधी सीटें मिल रही थीं।

इस मौके पर गांधी जी ने अपने व्याख्यान में कहा था—

"यहाँ रहने की मेरी जितनी जरूरत होगी, मैं रहने को तैयार हूं। सविनय अवज्ञा का आन्दोलन मैं फिर से नहीं छेड़ना चाहता। दिल्ली के समझौते की बात को मैं स्थायी शांति में बदल देना चाहता हूँ, लेकिन ईश्वर के नाम पर मुझ ६२ साल के दुबले-पतले आदमी को थोड़ा तो मौक़ा दो; मेरे लिये और जिस संस्था का मैं प्रतिनिधि हूँ उसके लिये अपने हृदय में थोड़ा सा तो स्थान दो।"

लेकिन इन बातों का अंग्रेज़ जनता के ऊपर क्या असर हुआ होगा, इसके बताने की आवश्यकता नहीं। सुभाष बाबूने अपनी 'इण्डियन स्ट्रगल' में लिखा है कि इसके विपरीत यदि गांधी जी स्टालिन, मुसोलिनी या हिटलर की भाषा में बोले होते तो जॉन बुल को उनकी बात समझने में ज़रा भी देर न लगती, और उसे उनके सामने अवश्य झुकना पड़ता। ऐसी हालत में कोई आश्चर्य की बात नहीं जो अनुदार दल के राजनीतिज्ञ यह सोचने लगे थे—

"क्या सचमुच यह लंगोटीधारी दुबला-पतला आदमी इतना शक्तिशाली है कि ब्रिटिश सरकार को उसके सामने झुकना पड़ा था? बात असल में यह है कि हिन्दुस्तान में उस समय ऐसे व्यक्ति का शासन था जिसे वाइसराय न बनाकर एक पादरी बनाना चाहिये था। यदि इस वक़्त दिल्ली में और इन्डिया आफ़िस में कोई ज़ोरदार व्यक्ति होता तो यह नौबत कभी न आती।"

सुभाष लिखते हैं—"गांधी जी को चाहिये था कि मौक़ा मिलते ही वे परिषद् छोड़ कर चले आते, और अमरिका आदि देशों में भ्रमण कर अंग्रेज़ों की पोल खोलते जिससे विदेशियों के हृदय में हिन्दुस्तान की जनता के प्रति सहानुभूति पैदा होती।" इस संबंध में उस समय सुभाष बाबू ने गांधी जी को एक पत्र भी लिखा था कि वे केवल ब्रिटेन होकर ही वापिस न चले आयें, बल्कि जर्मनी, इटली और रूस आदि देशों की भी यात्रा करें।

[११]

आन्दोलन पुनः आरंभ (१९३२)

सरकार का दमनचक्र

२८ दिसंबर को महात्माजी खाली हाथ बंबई पहुँचे, जहाँ उनका बड़ी शानदार स्वागत हुआ। मालूम होता था कि गांधीजी स्वराज लेकर लौटे हैं। बंबई पहुँचते ही महात्मा जीने आज़ाद मैदान में एक बड़ी सभा में भाषण दिया। इस समय डॉ. अम्बेडकर के अनुयायियों और स्थानीय कम्युनिस्ट पार्टी ने गांधीजी के समक्ष विरोधी प्रदर्शन किये थे।

जैसा पहले कहा जा चुका है नौजवान और मज़दूर हलक़ों में दिल्ली समझौते की काफ़ी निन्दा हुई थी। दरअसल इस समझौते में जनता के हित की कोई बात थी भी नहीं। असंतोष की यह अग्नि बंगाल में काफ़ी मात्रा में दिखाई दी। चटगाँव, ढाका, कलकत्ता, मिदनापुर आदि स्थानों में क्रांतिकारी लोग पुलिस से बदला लेने के लिये अपने प्राणों की बाज़ी लगा रहे थे। कहना न होगा कि इन स्थानों में पुलिस ने बड़े बड़े दिल दहलाने वाले अत्याचार किये थे, जिनके ख़िलाफ़ जाँच-कमेटियाँ क़ायम करने के निर्णय के बावजूद अधिकारियों की ओर से न कोई कार्रवाई की गई, और न जिन लोगों का नुक़सान हुआ था उन्हें कोई मुआवजा ही दिलाया गया। इसी समय कुछ क्रांतिकारियों को फांसी भी दे दी गई थी।

इन सब घटनाओं को देखकर बरहमपुर में बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस की बैठक हुई जिसमें तय किया गया कि सरकार ने दिल्ली—समझौते का भंग किया है, अतएव सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू होना चाहिये। सीमाप्रान्त और सयुक्तप्रान्त में भी संघर्ष चल रहा था। सरकार ने सीमाप्रान्त के लाल कुर्ती वाले स्वयंसेवक दल को ग़ैरक़ानूनी क़रार देकर उन्हें और उनके नेता अब्दुलग़फ़ार ख़ा को गिरफ़्तार कर कहीं दूर भेज दिया था। संयुक्त-प्रान्तमें किसानों की आर्थिक दशा बड़ी ख़राब हो रही थी, और वे लगान अदा करने में असमर्थ थे। ऐसी दशा में संयुक्तप्रान्त में करबन्दी का आन्दोलन जारी करना पड़ा, जिसे कुचलने के लिये सरकार ने अपनी सारी ताक़त लगा दी। इस मौक़े पर पं. जवाहरलाल नेहरू और श्री शेरवानी महात्मा जी के स्वागत में शरीक होने के लिये इलाहाबाद से बंबई जाते समय रास्ते में पकड़ लिये गये।

गांधीजी का फिर वाइसराय को पत्र

बंबई पहुँचते ही गांधी जी ने अगले दिन कांग्रेस कार्यकारिणी समिति बुलाई, और उसकी सम्मति से वाइसराय से मिलने के लिये पत्र लिखा। इस पत्र में लिखा था—

"कल जहाज़ से उतरने पर मुझे मालूम हुआ कि सीमाप्रान्त, युक्तप्रान्त, और बंगाल में आर्डिनेन्स जारी हो रहे हैं, और मेरे अनमोल साथियों को पकड़ लिया गया है। ऐसी हालत में क्या मैं समझूं कि आपकी और हमारी पारस्परिक मित्रता ख़तम हो चुकी है, या इस विषय में आपसे मिलकर चर्चा करना आवश्यक है।"

वाइसराय ने लिख दिया कि आर्डिनेन्सों की बाबत मैं कोई चर्चा नहीं कर सकता। गांधीजी ने वाइसराय को दूसरा तार दिया, और उनसे अपने निर्णय पर

पुनः विचार करने का अनुरोध करते हुए मुलाक़ात की इजाज़त मांगी। साथ ही गांधी जीने वाइसराय को कार्यकारिणी के उस प्रस्ताव की नक़ल भी भेज दी जिस में कार्यकारिणी ने अमुक शर्तें पूरी न होने पर सविनय अवज्ञा के आन्दोलन का आह्वान किया था। वाइसराय ने उत्तर दिया कि सविनय अवज्ञा की धमकी दिखाकर मुलाकात करने का सवाल ठीक नहीं। इस पर गांधीजी ने फिर उन्हें तार दिया कि प्रामाणिक मत-प्रदर्शन को धमकी समझना ग़लत है, तथा मैं सरकार को विश्वास दिलाता हूँ कि कांग्रेस की लड़ाई सर्वथा द्वेष रहित और अहिंसात्मक तरीक़ों से चलाई जायगी।

दमन का दौरदौरा

समझौते की बात ख़तम हो गई। ४ जनवरी को सरकार की ओर से एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ और गांधीजी को गिरफ़्तार कर लिया गया। वास्तव में गांधीजी के लंदन रवाना होने के समय से ही सरकार दमन की तैयारियाँ कर रही थी। हुकुम निकलने की देर थी। कार्यकर्त्ताओं की सूची सरकार के पास तैयार थी ही; बस धरपकड़ शुरू हो गई। वाइसराय ने ६ दिन के अन्दर-अन्दर आन्दोलन को ख़तम कर देने का ऐलान किया। लेकिन जब सरकार लोगों को पकड़ते-पकड़ते थक गई तो उसने मारपीट शुरू कर दी। सभाओं और जुलूसों पर प्रतिबंध लगा दिये गये, कांग्रेस ग़ैरक़ानूनी बना दी गई उसके दफ़्तरों पर अधिकार कर लिया गया, उसका तमाम पैसा ज़ब्त कर लिया गया, जनता को चेतावनी दी गई कि कांग्रेस की कोई मदद न करे। लगान न देने से ज़मीन-जायदाद ज़ब्त होने लगीं, राष्ट्रीय प्रेस और साहित्य पर प्रतिबंध लगा दिये गये, लाठीचार्ज और गोलीबारी होने लगी, जेल में राजनैतिक क़ैदियों के साथ अत्याचार होने लगे। लेकिन आन्दोलन न रुका। बदस्तूर सभायें होती थीं, जुलूस निकलते थे, कांग्रेस-पत्रिकायें प्रकाशित होती थीं,

सरकारी इमारतों पर झंडा फहराया जाता था, नमक क़ानून भंग किया जाता था, तथा राष्ट्रीय सप्ताह और राजनैतिक क़ैदी-दिवस मनाये जाते थे। इसी समय २४ अप्रैल को कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन भी दिल्ली में किया गया।

भले ही गोलमेज परिषद् से हिन्दुस्तान को कुछ न मिला हो, लेकिन इतनी बात अवश्य हुई कि ब्रिटिश सरकार इस परिषद् को अपनी बड़ी करारी हार मान रही थी, यही कारण है कि वह खीजकर हिन्दुस्तान की जनता से बदला लेने पर तुली थी। दुर्भाग्य से इस आन्दोलन की तैयारियाँ कुछ भी न थीं। आन्दोलन के पुराने तरीक़े सरकार को सब मालूम हो चुके थे, अतएव सरकार निश्चिन्त थी। ख़ैर, पहले आठ महीने तक आन्दोलन खूब ज़ोर से चला। मार्च में जमीयत-उल-उलेमा भी इसमें शरीक हो गई।

इसी समय बंबई में हिन्दू-मुसलिम दंगा शुरू हो गया, जो छह महीने तक चलता रहा। गुजरात और संयुक्तप्रान्त के किसानों पर बड़ी ज्यादतियाँ की गईं, बंगाल में क्रांतिकारी प्रवृत्तियों को कुचलने के लिये सरकारने फ़ौजी क़ानून जारी कर दिया, और गांवों पर सामूहिक जुर्माने किये जाने लगे। सरकार का शासन शुद्ध आर्डिनेन्सों का शासन हो गया था। सुभाष बाबू फिर १८१८ के रेगूलेशन ३ के अन्दर पकड़ लिये गये।

गांधीजी का आमरण अनशन

गांधीजी ने गोलमेज परिषद् में कहा था कि यदि अस्पृश्यों को हिन्दुओं से पृथक् किया गया तो वे अपने प्राणोंकी बाज़ी लगा कर उसका मुक़ाबला करेंगे। तदनुसार गांधी जीने जेल से भारतमंत्री को पत्र लिखा कि यदि अस्पृश्यों का पृथक् निर्वाचन किया गया तो वे आमरण अनशन करेंगे। उत्तर मिला कि उचित समय आने पर इस विषय पर विचार किया जायगा। इसके बाद १७ अगस्त को रैमज़े मैकडोनल्ड ने 'साम्प्रदायिक निर्णय' की घोषणा की जिसमें

दलित जातियों को पृथक् निर्वाचन के अधिकार के साथ साधारण निर्वाचन में भी उम्मीदवारी करने और दुहरे वोट हासिल करने का अधिकार दिया।

१८ अगस्त को गांधी जीने प्रधानमंत्री को दूसरा पत्र लिखा जिस में उन्होंने बताया कि २० सितंबर को तीसरे पहर से वे अपना अनशन शुरू कर देंगे। ८ सितंबर को प्रधानमंत्री का जवाब आ गया और १२ सितंबर को सब पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर दिया गया।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि गांधीजी के आमरण अनशन से देशभर में बड़ी हलचल मच गई। जगह-जगह से तार आने लगे और गांधीजी को छुड़ाने के लिये नाना प्रयत्न किये जाने लगे। सरकार ने गांधीजी की मुलाकात और पत्र-व्यवहार के ऊपर से रोक हटा ली। इस समय १९ सितंबर को पं. मदनमोहन मालवीय ने बंबई में हिन्दू नेताओं की एक परिषद् की जिस में गांधीजी को बचाने के लिये विचार किया गया। उधर अस्पृश्यों के नेता रावबहादुर एम. सी. राजा ने पृथक् निर्वाचन की निन्दा की, और सर तेजबहादुर सप्रू ने गांधीजी की रिहाई की मांग पेश की। भारतवर्ष में २० सितंबर को उपवास और प्रार्थनायें की गईं।

इस समय पूना में एक योजना बनाई गई जिसे उपवास के पाँचवें दिन अछूत नेताओं ने स्वीकार करते हुए दलित जातियों के पृथक् निर्वाचन का अधिकार त्याग दिया, और साधारण हिन्दू निर्वाचन से ही संतोष मान लिया। इस निर्णय को पूना समझौते के नाम से पुकारा जाता है। २६ तारीख़ को सुबह इंगलैंड और भारत में एक साथ घोषणा की गई कि पूना समझौता स्वीकार कर लिया गया। इसके बाद गांधीजी ने उपवास तोड़ा और देशभर में बड़ी ख़ुशियाँ मनाई गईं।

इसी समय गांधीजी ने यह भी घोषणा की कि यदि उचित समय के भीतर अस्पृश्यता-निवारण संबंधी सुधार नेकनीयती के साथ पूरा न

किया गया तो उन्हें निश्चय ही फिर से उपवास करना पड़ेगा। जो कुछ भी हो, जब तक गांधीजी का उपवास जारी रहा, मालूम होता था कि लोगों ने विचार करना ही छोड़ दिया है। उपवास समाप्त होते ही जब लोगों ने पूना समझौते पर कुछ सोचना शुरू किया तो मालूम हुआ कि इसमे पृथक् निर्वाचन की समस्या बिलकुल भी हल न हुई। तथा लोग अब गंभीरता से सोचने लगे कि महात्माजी को इसके लिये प्राणों की बाज़ी लगा देना उचित न था, विशेषकर उस हालत में जब कि साम्प्रदायिक निर्णय शुरू से आखिर तक आपत्तिजनक था। लेकिन साथ ही यह बात माननी होगी कि इससे हिन्दू जाति में अभूतपूर्व चेतना आ गई थी, जिसके फलस्वरूप जगह-जगह अस्पृश्यता-निवारण का ज़ोरों से प्रचार होने लगा, और हरिजनों को मंदिर-प्रवेश और कुँओं से पानी भरने की इजाज़त दी जाने लगी।

अनशन का विदेशों में प्रचार

गांधीजी के इस अनशन का अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में कुछ अच्छा प्रभाव न पड़ा। इससे हिन्दुस्तान की अस्पृश्यता का विदेशों में काफ़ी विज्ञापन हुआ। सुभाष बाबू लिखते हैं कि अबतक विदेशी लोग हिन्दुस्तान की राजनैतिक समस्या से ही वाकिफ़ थे लेकिन अब उन्हें मालूम हुआ कि हिन्दुस्तानियों की आन्तरिक समस्यायें भी काफ़ी गंभीर हैं। अंग्रेज़ोंने इस परिस्थिति का ख़ूब लाभ उठाया, और साफ़ साफ़ कहा गया कि गांधीजी अस्पृश्यों को अधिकार नहीं देना चाहते, तथा हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुसलमान ही नहीं बल्कि हिन्दू-हिन्दू भी आप में इत्तफ़ाक़ से नहीं रह सकते, और इसीलिये भारत में अमन क़ायम रखने के लिये अंग्रेज़ों की ज़रूरत है।

अनशन से दूसरा नुक़सान यह हुआ कि देश का राजनैतिक पक्ष कमज़ोर पड़ गया। गांधीजी ने जेल में बैठे-बैठे अस्पृश्यता-निवारण का आन्दोलन

शुरू कर दिया था। गांधीजी की बातों से लोग समझने लगे कि राजनैतिक कार्य की अपेक्षा गांधीजी अब सामाजिक कार्य को अधिक महत्त्व दे रहे हैं। इसीलिये सरकार ने गांधीजी को अस्पृश्यता-निवारण से संबंध रखनेवाली मुलाक़ातों और पत्रव्यवहार की छूट दे दी थी। निश्चय ही गांधीजी के इस रुख़ से देश के राजनैतिक कार्य को काफ़ी क्षति पहुँची, और बहुत से लोग राजनैतिक प्रवृत्तियों को बन्द करके हरिजन प्रवृत्तियों में लग गये।

तीसरी गोलमेज परिषद्

२७ जून को सरकार ने घोषणा की कि प्रान्तीय स्वायत्त शासन (प्रोविंशियल ऑटोनोमी) तथा संघशासन दोनों एक ही बिलमें रखे जायेंगे जिससे तीसरी गोलमेज परिषद् की ज़रूरत न हो। लेकिन लिबरल नेताओं ने इसका विरोध किया। आगे चलकर नवंबर के मध्य में तीसरी गोलमेज की योजना की गई जिसमें निम्नलिखित बातें तय पाईं:—

(१) ब्रिटिश भारत में फैडरेल लैजिस्लेचर में मुसलमानों का ३३$\frac{1}{3}$ प्रतिशत प्रतिनिधित्व रहेगा।

(२) संघ-शासन कब से कार्यान्वित होगा, इसका ठीक-ठीक समय बताना संभव नहीं।

(३) सिंध और उड़ीसा अलग-अलग प्रान्त माने जाँय।

(४) रक्षा-बजट पर मत नहीं लिये जायेंगे।

(५) भारतीय सेना को बाहर भेजने के लिये फैडरल मिनिस्ट्री और फैडरल लैजिस्लेचर का निर्णय माना जायगा, लेकिन भारत के संरक्षण के लिये सेना को बाहर भेजने न भेजने का पूर्ण अधिकार वाइसराय को होगा।

[१२]

हार और आत्मसमर्पण (१९३३-४)

आन्दोलन स्थगित

कांग्रेस को डर था कि कहीं आन्दोलन धीमा न पड़ जाय। २६ जनवरी, १९३३ के दिन बड़ी शान से स्वतंत्रता-दिवस मनाया गया। सिर्फ़ कलकत्ते में ३०० गिरफ़्तारियाँ हुईं। कई जगह गोलियाँ भी चलीं, तथा बोरसद में कस्तूरबा गांधी को गिरफ़्तार कर छह महीने की सज़ा दे दी गई। इसके बाद १७ मार्च को व्हाइट पेपर की घोषणा की गई, जिसे सुनकर सब भौंचक्के रह गये। इस में हिन्दुस्तान के हाथ-पाँव जकड़ कर बाँध दिये गये थे, जिस में 'ख़ास ज़िम्मेवारियाँ' और 'संरक्षण' के रूप में कुछ और जंज़ीरें भी जोड़ दी गई थीं। उधर श्री अणे की अध्यक्षता में कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन होनेवाला था। दिल्ली अधिवेशन की तरह सरकार ने इस पर भी रोक लगा दी थी, फिर भी बाहर मे बहुत से डेलीगेट आये। लेकिन पुलिस ने मुख्य-मुख्य सब नेताओं को पकड़ लिया।

कहने को आवश्यकता नहीं कि जनता ने हमेशा की तरह इस बार भी अपनी मुस्तैदी दिखाई। यही कारण था कि ६ सप्ताह की जगह सरकार १५ महीने में भी आन्दोलन को न कुचल सकी। इस समय जब अचानक लोगों को मालूम हुआ कि गांधीजीने आन्दोलन स्थगित कर दिया है तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

इस समय महात्माजी को जेल से छोड़ दिया गया था। बात यह हुई कि ८ मई को महात्माजी ने फिरसे २१ दिनका उपवास किया। अबकी बार गांधीजी ने ख़ुद अपनी और अपने साथियों की हृदय-शुद्धि के लिये यह उपवास किया था जिससे हरिजन कार्य अधिक सतर्कता और सावधानी से हो। स्वभावतः सरकार को इस उपवास पर कोई ऐतराज़ न था, उल्टे सरकार ने पहले की तरह इस उपवास का काफ़ी उपयोग किया। जेल से छूट कर गांधीजी ने सविनय अवज्ञा के आन्दोलन को छह सप्ताह के लिये स्थगित करने की घोषणा की।

गांधीजी अपने उपवास के मध्य में थे, अतएव लोगोंका इस तरफ विशेष ध्यान नहीं गया। बाहर आने पर गांधीजीने हरिजन कार्य के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य में योग न देने का निर्णय किया। इस समय उन्होंने आर्डिनेन्स ख़ारिज करने और कांग्रेस कार्यकर्ताओं को छोड़ देने की सरकार से अपील की। लेकिन सरकारने कोई ध्यान न दिया।

मार्च १९३३ में सुभाष बाबू १४ महीने की जेल काट कर आये और अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिये योरोप चले गये। इस वक़्त श्री विट्ठलभाई पटेल भी वियना में अपना स्वास्थ्य सुधार रहे थे। दोनों ने मिलकर एक संयुक्त वक्तव्य निकाला जिसमें गांधीजी की आलोचना करते हुए कहा कि राजनैतिक नेता की हैसियत से गांधीजी अपने मिशन में असफल रहे हैं, अतएव इस समय किसी अन्य नेता की आवश्यकता है जो देश की कायापलट कर सके।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

पूना में मुख्य-मुख्य कांग्रेस कार्यकर्ताओं की परिषद् हुई जिसमें कार्यकर्ताओं में दो दल हो गये। एक दल आन्दोलन के वापिस लेने के पक्ष में था, दूसरा इसे और ज़ोर से चलाने के पक्ष में। पहला पक्ष ज़ोरदार

था और वह कौंसिलों पर कब्ज़ा कर स्वराजपार्टी की नीति को अपनाना चाहता था। इस परिषद् में तय किया गया कि महात्माजी वाइसराय से मिलकर कुछ समझौता करें। यदि इसमें सफलता न हो तो सामूहिक सत्याग्रह बन्द कर व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू किया जाय। अस्तु, गांधी-वाइसराय मुलाक़ात में गांधीजी को बहुत शर्मिन्दगी उठानी पड़ी। अन्त में कुछ चुने हुए व्यक्तियों ने सत्याग्रह आन्दोलन जारी कर दिया, लेकिन जब सामूहिक सत्याग्रह कारगर न हुआ तो व्यक्तिगत से क्या होनेवाला था?

महात्माजी फिर जेल में पहुँच गये। इस बार उन्हें जेल के अन्दर रहकर हरिजन आन्दोलन चलाने की सुविधायें न दी गई, जिसका गांधीजी ने विरोध किया और अनशन की धमकी दी।

व्यक्तिगत सत्याग्रह भी धीमा पड़ता जा रहा था। सरकार ने सोचा कि ऐसे मौक़े पर गांधीजी को छोड़ देने से कोई विशेष हानि नहीं, लिहाज़ा उन्हें जेल से रिहा कर दिया गया। गांधीजी को ४ अगस्त के दिन १ साल की सज़ा दी गई थी, अतएव जेल से छूटने के बाद उन्होंने कहा कि ३ अगस्त १९३४ तक मैं अपने को एक क़ैदी की तरह ही समझूँगा, और तबतक सत्याग्रह में कोई हिस्सा न लूगा। गांधीजीने हरिजन आन्दोलन के लिये देश का दौरा किया।

व्यक्तिगत सत्याग्रह की आलोचना

जौलाई में गांधीजीने दूसरा वक्तव्य प्रकाशित किया कि कांग्रेस में गुप्त प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं, और इसीलिये सविनय अवज्ञा आन्दोलन सफल नहीं हो सका। बस कांग्रेस के अध्यक्ष श्री. अणे ने कांग्रेस के संगठनों को भंग करने का हुकूम निकाल दिया, जिस से जनता में काफ़ी भ्रम फैला।

इस वक़्त पं. जवाहरलाल २ साल की क़ैद काट कर आये थे। लोगों की आंखें उनकी ओर थीं। वे गांधीजो से मिले भी लेकिन कोई

ख़ास समस्या हल होती हुई नज़र न आई। जितने दिन जवाहरलाल जेल के बाहर रहे, उन्होंने समाजवाद और साम्यवाद के सिद्धांतों का डट कर प्रचार किया, लेकिन कांग्रेस में कोई विशेष परिवर्तन न हुआ।

बंबई के श्री के. एफ. नरीमैन भी इसी वक़्त ३ बरस की जेल काट कर बाहर आये थे। उन्होंने जब देश की यह हालत देखी तो व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू करने और कांग्रेस संस्थाओं को भंग करने आदि की नीति की कड़ी आलोचना करते हुए कहा कि राजनीति और धार्मिकता का संमिश्रण कर के गांधी जी देश को गलत रास्ते पर ले जा रहे हैं। अतएव ऐसा रास्ता ढूँढना चाहिये जिससे हम गांधीजी को अपनी गलत आदतों को छोड़ने के लिये प्रेरित कर सकें। श्री नरीमैन ने कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक बुलाने का भी प्रयत्न किया, लेकिन वे सफल न हुए। आगे चलकर नरीमैन के विरुद्ध कांग्रेस का अनुशासन भंग करने की कार्रवाई की गई।

कौंसिल-प्रवेश का प्रस्ताव

१९३४ में पं. जवाहरलाल नेहरू फिर जेल पहुँच गये। उनकी अनुपस्थिति में डॉ. अंसारी के ऊपर सब ज़िम्मेवारियाँ आकर पड़ीं। उन्होंने डॉ. विधानचन्द्र राय के साथ मिलकर ३१ मार्च १९३४ को दिल्ली में कांग्रेसियों की एक परिषद् बुलाई। इस समय व्यक्तिगत सत्याग्रह ठप्प हो चुका था, और आर्डिनेन्सों के मारे कांग्रेस की नाक में दम था। अब एक ही मार्ग था कि यदि कांग्रेस सविनय अवज्ञा आन्दोलन को वापिस ले तो आर्डिनेन्सों से छुटकारा हो सकता है। अस्तु, परिषद् में अखिल भारतीय स्वराज पार्टी को जीवित करने का प्रस्ताव पास किया गया, जिसमें बताया गया कि दमनकारी क़ानूनों और व्हाइट पेपर की योजना को रद्द करके राष्ट्रीय मांगों को प्राप्त करने के लिये कौंसिलों के आगामी निर्वाचन में भाग लेना आवश्यक है। आगे चल कर २-३ मई को रांची की मीटिंग में इस संबंध में महात्मा जी की अनुमति भी प्राप्त हो गई।

इसके पश्चात् १८–१६ मई को पटना में कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक हुई जिसमें स्वयं महात्माजी ने कौंसिल–प्रवेश का अनुमोदन किया। इस वक़्त इन्डियन लैजिस्लेटिव असेंबली भंग करके नवंबर में नये चुनाव होने जा रहे थे। कांग्रेस ने प्रस्ताव किया कि स्वराज पार्टी के स्थान पर स्वयं कांग्रेस चुनावों को अपने हाथ में ले। आन्दोलन बन्द करने का प्रस्ताव भी कांग्रेस की ओर से किया गया। सरकार की मुराद पूरी हुई, और जून में सरकार ने कांग्रेस के ऊपर से प्रतिबंध हटा लिया। इस समय किसान और मज़दूरों का आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा था। ६ महीने तक हिन्दुस्तान भर में हड़तालों का ज़ोर चलता रहा। जौलाई में कम्युनिस्ट पार्टी ग़ैरक़ानूनी बना दी गई।

सोशलिस्ट पार्टी का जन्म

मई १९३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का जन्म हुआ जिसकी प्रथम बैठक आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में हुई। यह पार्टी गांधीजी के सत्याग्रह में विश्वास नहीं करती थी और इस का मानना था कि हिन्दुस्तान को आज़ाद करने के लिये ही साम्राज्यशाही को नष्ट करना आवश्यक नहीं, बल्कि हिन्दुस्तानियों को शोषण से मुक्त करने के लिये और उनके रहन-सहन को ऊँचा करने के लिये भी ऐसा करना आवश्यक है।

नैशनलिस्ट पार्टी

इस समय कांग्रेस में 'साम्प्रदायिक निर्णय' को लेकर एक और मतभेद खड़ा हो गया। पं. मालवीय और श्री अणे का कहना था कि व्हाइट पेपर की तरह कांग्रेस को 'साम्प्रदायिक निर्णय' का भी विरोध करना चाहिये, लेकिन कांग्रेस कार्यकारिणी के अन्य सदस्यों ने इसे स्वीकार न किया। उन्होंने कहा कि साम्प्रदायिक निर्णय को न हम स्वीकार करना चाहते हैं न

अस्वीकार । इन लोगों की दलीलें थीं:-(१) कांग्रेस हर जाति का प्रतिनिधित्व करती है, अतएव कांग्रेस साम्प्रदायिक मुसलमानों की भी प्रतिनिधि है, (२) जब तक सब पार्टियाँ किसी एक निर्णय पर न पहुच जाँय, मौजूदा हल को ही स्वीकार करना ठीक है ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि ये दोनों दलीलें दोषपूर्ण थीं । कुछ भी हो, 'साम्प्रदायिक निर्णय' को हर हालत में अस्वीकार ही करना चाहिये था । इस वक़्त प. मालवीय और श्री अणे ने कांग्रेस मे स्तीफ़ा देकर कांग्रेस नैशनलिस्ट पार्टी की स्थापना की, जिससे बंगाल के हिन्दू विशेष प्रसन्न हुए । कलकत्ते में १८-१९ अगस्त को पार्टी की मीटिंग की गई ।

गांधीजी के संशोधन

८-१० सितंबर को वर्धा में कार्यकारिणी की बैठक हुई । गांधीजी ने कहा—"कुछ लोगों का ख़याल है कि मैं देश की प्रगति में बाधक हूँ, और कांग्रेस मेरे हाथ की एक कठपुतली बन गई है । तथा मेरी और कांग्रेस की विचार-दृष्टि में बहुत मतभेद है । लोग अहिंसा को सिद्धांतरूप में न मानकर उसे केवल नीति समझते हैं । अतएव मेरा राजनीति से अलग हो जाना ही ठीक है ।" इस समय गांधीजीने कांग्रेस में तीन संशोधन पेश किये:—

(१) स्वाधीनता के प्रस्ताव में 'उक्ति' और 'शांतिमय' शब्दों के स्थान पर 'सत्यतापूर्ण' और 'अहिंसा' शब्द रखने चाहिये ।

(२) चार आना सदस्य के स्थान पर कांग्रेस के हर सदस्य को चाहिये कि वह प्रत्येक महीने ८,००० फ़ीट सूत कात कर दे । इस शर्त को मताधिकार के लिये अनिवार्य कर दिया जाय ।

(३) जिस व्यक्ति का नाम छह महीने तक कांग्रेस रजिस्टर में रहा हो और जो आदतन खद्दर पहनने वाला हो वही व्यक्ति कांग्रेस में मत दे सकेगा ।

३॥ वर्ष बाद २६–२८ अक्टूबर १९३४ को बंबई में जो कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, उस में उक्त तीनों संशोधन पास हो गये और गांधीजीने राजनीति छोड़ने का इरादा मुल्तवी कर दिया। इस अधिवेशन के सभापति बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी थे। अधिवेशन में व्हाइट पेपर की आलोचना करते हुए गांधीजी को छोड़ कर अन्य लोगों के लिये सविनय प्रतिरोध मौकूफ़ कर दिया गया, और कांग्रेस ने अहिंसा में और गांधीजी के नेतृत्व में अपना पूर्ण विश्वास घोषित किया। इस समय अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग संघ की स्थापना की गई।

सुभाष बाबू फिर नज़रबन्द

योरोप में अपने पिताजी की बीमारी का 'केबलग्राम' पाकर सुभाष बाबू हिन्दुस्तान के लिये रवाना होकर हवाईजहाज़ से कलकत्ते उतरे। उतरते ही सरकार ने उन्हें फिर १८१८ के रेगूलेशन ३ के अन्दर पकड़ कर घर में नज़रबन्द कर दिया। यहाँ उनसे उनके कुटुंब के व्यक्तियों को छोड़कर कोई नहीं मिल सकता था, पत्र-व्यवहार की उन्हें इजाज़त नहीं थी, और ज्यों की त्यों बन्द चिट्ठियाँ उन्हें डिपुटी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस को दे देनी पड़ती थीं। सुभाष बाबू के पिता की मृत्यु हो जाने के बाद वे हिन्दुस्तान में ही रहना चाहते थे, लेकिन सरकारने उन्हें सात दिन के अन्दर योरोप लौट जाने को कहा। उन्होंने कम से कम १ महीना हिन्दुस्तान में रहने की इजाज़त मांगी मगर न मिली। आख़िर सुभाष बाबू १० जनवरी, ३४ को वियना के लिये वापिस रवाना हो गये।

इसी वर्ष जोलाई महीने में अचानक श्री जे. एम. सेनगुप्त और श्री विट्ठलभाई पटेल की मृत्यु हो गई। श्री पटेल के शव को वियना से हिन्दुस्तान लाया गया। उन्होंने १ लाख रुपये विदेशोंमें कांग्रेस-प्रचार के लिये दान दिया।

[१३]

आगे क़दम (१९३५–६)

सन् १९३५

सरकारी दमन से कुचली जाकर कांग्रेस १६३०–४ के बाद धीरे–धीरे अपनी शक्ति को संगठित कर अपनी नई नीति निर्धारित कर रही थी। साल के शुरू में १६–१८ जनवरी को कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक हुई जिसमें स्वाधीनता–दिवस के लिये खास प्रस्ताव पास किया गया चूंकि कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन बन्द कर दिया है, अतएव इस वर्ष किसी सरकारी आर्डिनेन्स या क़ानून को भंग करने के इरादे से कोई कार्रवाई न की जानी चाहिये। इस अवसर पर लोगों को मन, वचन, काय से अहिंसा और सत्य पालन करने के लिये, खद्दर पहनने के लिये और अस्पृश्यता निवारण के प्रयत्न करने के लिये विशेष रूप से कहा गया। इस साल सम्राट् की रजत जयन्ती मनाई जानेवाली थी, इस में कांग्रेस ने हिस्सा लेने से इन्कार कर दिया।

साम्प्रदायिक समस्या सुलझाने के लिये राजेन्द्र बाबू और मिस्टर जिन्ना की मुलाक़ातें हुई, लेकिन कुछ न हुआ। उधर सरकार की दमननीति चालू ही थी। कलकत्ते में राजद्रोह के मामले चल रहे थे, अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अधिवेशन को कलकत्ते में करने की मनाई कर दी गई

थी, और ज़रा ज़रा सी बात पर कांग्रेसियों के ख़िलाफ़ कार्रवाई की जाती थी। केवल बंगाल में नज़रबन्दों की संख्या २७०० तक पहुँच गई थी। अब्दुलग़फ़ार खाँ को बंबई में भाषण देने के अपराध में २ साल की, और डॉ. सत्यपाल को १ साल की सज़ा मिली थी।

२४–२५ अप्रैल को कांग्रेस की जबलपुर में बैठक हुई जिस में नज़र बन्द–दिवस मनाने का और उनके परिवार और आश्रितों के कष्ट–निवारणार्थ चन्दा इकट्ठा करने का निश्चय किया। इसी समय क्वेटा कष्ट–निवारण समिति क़ायम हुई। तत्पश्चात् जौलाई के अन्त में वर्धा में कार्य-समिति की बैठक हुई जिस में देशी नरेशों और देशी राज्यों के प्रति अपनी नीति स्पष्ट करते हुए कहा गया कि भारतीय रियासतों की प्रजा को स्वराज प्राप्त करने का उतना ही अधिकार है जितना ब्रिटिश भारत की प्रजा को। इसी वक़्त ३ सितंबर को पं. जवाहरलाल नेहरू अपनी पत्नी की बीमारी के कारण अलमोड़ा जेल से छूट कर आये। तत्पश्चात् १७–१८ अक्टूबर को मद्रास में कांग्रेस की बैठक हुई जिस में पार्लियामेन्ट द्वारा पास किये गये भारत–शासन विधान की आलोचना की गई।

लखनऊ अधिवेशन

सन् १९३६ में पं. जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में वार्षिक अधिवेशन हुआ। इस समय भारतवासी चाहते थे कि इस मौक़े पर यदि सुभाष बाबू भी आ सकें तो कितना अच्छा हो। स्वयं जवाहरलाल जी की बड़ी अभिलाषा थी कि सुभाष बाबू कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी बनाये जॉय। ख़ैर, सुभाष इटेलियन जहाज़ पर बैठकर उतरे और उतरते ही वे ११ अप्रैल को गिरफ़्तार कर यरवदा जेल भेज दिये गये। इस पर भारत की जनता में बहुत शोर मचा, इंगलैंड में भी हाउस ऑफ़ कॉमन्स में प्रश्न पूछे गये, परन्तु कोई असर न हुआ।

अस्तु। लखनऊ अधिवेशन कई दृष्टि से बहुत महत्त्व का है। पं. जवाहरलाल नेहरू ने इस मौक़े पर समाजवाद के आदर्श देश के सामने रखते हुए बताया कि फ़ैसिज़्म और इम्पीरियलिज़्म के खिलाफ़ संयुक्त जनवादी मोर्चा क़ायम करना चाहिये, जिसके लिये मज़दूर, किसान और कांग्रेसवादी मध्यम वर्ग के लोगों का संगठन करना लाज़िमी है। पं. नेहरू ने किसान और मज़दूरों के संगठन को कांग्रेस से संयुक्त करने का प्रस्ताव रक्खा लेकिन वह पास नहीं हो सका। इसके लिये एक जनसम्पर्क समिति क़ायम कर दी गई। वास्तव में इस समय जनता के सम्पर्क में आने और उनके सामाजिक तथा आर्थिक मामलों में दिलचस्पी लेने की आवश्यकता लोग महसूस कर रहे थे। हाथ की कताई आदि के स्थान पर किसानों की ज़मीन आदि के संबंध में ठोस योजनायें बनाने का प्रयत्न हो रहा था।

नये विधान के ऊपर बोलते हुए पं. नेहरू ने विधान की निन्दा करते हुए कहा कि हम जनता तक कांग्रेस का संदेश पहुँचाने के लिये ही निर्वाचन में भाग लेंगे, लेकिन जनसमूह के मताधिकार के आधार पर चुनाव होने चाहिये। सुभाष के खिलाफ़ सरकारी कार्रवाई की तीव्र निन्दा करते हुए १० मई को सुभाष-दिन मनाने का निश्चय किया गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि कांग्रेस ने देश के सामने पहली बार ठोस कार्यक्रम पेश किया जो राष्ट्रीय जनतंत्र के ऊपर अवलंबित था।

कांग्रेस की शक्ति धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी, जिसका पता उसके सदस्यों की संख्या से लगता है। इस अधिवेशन के समय कांग्रेस के सदस्यों की संख्या ४,५७,००० थी, फ़ैजपुर अधिवेशन के समय ६,३६,०००, कांग्रेस मिनिस्ट्री आने पर ३० लाख, सन् १९३८ के अन्त में ४० लाख और १९३९ में यह संख्या ५० लाख तक पहुँच गई थी।

निर्वाचन-घोषणापत्र

२२-२३ अगस्त १६३६ को बंबई में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक हुई जिसमें निर्वाचन-घोषणापत्र पर विचार किया गया। घोषणापत्र में कहा गया कि "यह समिति १९३५ के गवर्नमेंट आफ़ इन्डिया एक्ट का सख़्त विरोध करती हुई यह समझती है कि यह एक्ट हिन्दुस्तानियों के खिलाफ़ उन पर जबरन लादा गया है। इसमें नौकरशाही की ताक़त बढ़ेगी और जनता का शोषण होगा। अतएव कांग्रेस इससे कोई सहयोग न करेगी। कौंसिलों के अन्दर और बाहर रहकर इस क़ानून का विरोध करके इसका खतम कर देना ही कांग्रेस का एकमात्र उद्देश्य है। कांग्रेस उसी वैधानिक कार्यक्रम को मान सकती है जो हिन्दुस्तान की जनता द्वारा तैयार किया गया हो और भारत की स्वाधीनता को ध्यान में रखकर बनाया गया हो। कांग्रेस वास्तविक प्रजातंत्र राज्य के पक्ष में है जिसमें जनता की राजनैतिक सत्तायें जनता के हाथ में सौंप दी जायें, और जनता द्वारा शासन का संचालन हो। यह सत्ता विधान-परिषद् द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। यह परिषद् जनमत द्वारा निर्वाचित की जायगी और उसी के द्वारा देश का अन्तिम शासन-विधान तैयार हो सकेगा। अतएव कांग्रेस को जनबल के संगठित करने का काम अपने ऊपर लेना चाहिये।" आगे जाकर यह घोषणापत्र फैजपुर कांग्रेस के अधिवेशन पर प्रस्ताव रूप में रक्खा गया।

हिन्दुस्तान के किसानों की भयानक ग़रीबी और क़र्ज़दारी के संबंध में प्रस्ताव पास करते हुए कहा गया कि जबतक ब्रिटिश नौकरशाही का खातमा होकर ज़मीन आदि के संबंध में क़दीमी और दमनकारी नियमों में मौलिक परिवर्तन न किया जायगा तब तक हमारे किसान सुख की नींद नहीं सो सकते। इस मौक़े पर मेरठ कम्युनिस्ट षड्यंत्र केस में सज़ा पाये हुए मिस्टर डांगे ने संशोधन पेश करते हुए कहा कि उक्त प्रस्ताव में जिस राज्य का

खाका खींचा गया है उसे प्राप्त करने के लिये साम्राज्यशाही के विरुद्ध ज़बर्दस्त आन्दोलन खड़ा कर सत्ता को कब्ज़े में करना चाहिये, क्योंकि सत्ता प्राप्त करने के बाद ही जनता की विधान–परिषद् देश के लिये योजना बना सकती है। लेकिन यह संशोधन पास न हो सका। जो कुछ भी हो, कांग्रेस ने जातीयता और साम्प्रदायिकता से दूर रहकर राष्ट्रीय एकता के आधार पर चुनाव लड़े जिससे कांग्रेस को ख़ूब सफलता मिली।

इस वर्ष (१९३६) नये शासन का विरोध करने के लिये १ अप्रैल को हड़ताल मनाने का निश्चय किया, तथा कांग्रेस के मेंबर होने के लिये अन्य कोई शर्त न रखकर केवल चार आने फ़ीस रक्खी गई।

[१४]

कांग्रेस–सरकार (१९३७–८)

मंत्रिमण्डल की स्थापना

१७–१८ मार्च को कांग्रेस कमेटी की बैठक दिल्ली में हुई थी, जिस में प्रान्तों में जाकर पद ग्रहण करने के विषय में गरमागरम बहस हुई। यह बहस २ दिन तक चली और इस में ३० व्याख्याताओं ने भाग लिया। बाबू जयप्रकाश नारायण आदि समाजवादी नेताओंने पद–ग्रहण का विरोध किया, लेकिन उनका संशोधन पास न हो सका। जो कुछ भी हो, कांग्रेस ने बहुत ज़ोरों के साथ चुनाव लड़े जिसमें कांग्रेस को आशातीत सफलता मिली। इस के फल स्वरूप मद्रास, बंबई, संयुक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रदेश और उड़ीसा में कांग्रेस मंत्रिमंडल तथा आसाम और सिंध में सम्मिलित मंत्रिमंडल बनाया गया। कांग्रेस की इस विजय का नौकरशाही पर बहुत प्रभाव पड़ा जिससे साम्राज्यवादी पत्र भी कांग्रेस की लोकप्रियता के गीत अलापने लगे।

लेकिन कांग्रेस ने यह पहले ही स्पष्ट कर दिया था कि यदि प्रान्तों के गवर्नर कांग्रेस के वैधानिक कार्यक्रम में कोई बाधा उपस्थित करेंगे तो कांग्रेस किसी हालत में पद ग्रहण न करेगी। अतएव जब कांग्रेस मंत्रि–मंडल को भिन्न भिन्न प्रान्तों के गवर्नरों ने बुलाकर अपने विशेष अधिकारों की बात कही तो कांग्रेस ने पद ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया। आखिर

२२ जून को वाइसराय ने घोषणा की कि गवर्नर हर प्रकार के विरोध को दूर करने का प्रयत्न करेंगे। इस पर जोलाई महीने में उक्त सात प्रान्तों में कांग्रेस मंत्रिमंडल ने पद ग्रहण किया× ।

हरिपुरा-कांग्रेस

सुभाष बाबू मार्च १९३७ में जेल से छूट कर आये थे, लेकिन उनका स्वास्थ्य खराब रहता था, अतएव उन्हें फिर से योरोप जाना पड़ा । अब की बार वे एक स्वतंत्र व्ययक्ति की हैसियत से वहाँ गये थे ।

फ़र्वरी में हरिपुरा में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन होनेवाला था । सुभाष को अध्यक्ष चुना गया । १४ जनवरी को वे हवाईजहाज़ से उड़कर आये । महात्माजी ने उन्हें आशीर्वाद दिया । हरिपुरा में सुभाष बाबू का बड़ा शानदार जुलूस निकाला गया ।

योरोप में युद्ध के बादल मँडरा रहे थे, जिससे भारत के नेता कुछ चिन्तित हो उठे थे । उधर संयुक्तप्रान्त और बिहार के कांग्रेस के मंत्रियों ने राजनैतिक क़ैदियों की रिहाई के प्रश्न को लेकर अपने स्तीफ़े दे दिये । कांग्रेस के लेफ़्टविंग के लोग चाहते थे कि इसी प्रकार सातों प्रान्तों में कांग्रेस मंत्रिमंडल अपने स्तीफ़े दे दें ।

खुले अधिवेशन में शासन-विधान का विरोध करते हुए सुभाष बाबू ने कहा कि हम

× इस वर्ष की अन्य घटनाओं में (१) २६-३१ अक्टूबर को पं. नेहरू की अध्यक्षता में कलकत्ते में कांग्रेस अधिवेशन, (२) मार्च महीने में ५ बरस के बाद सुभाष बाबू की जेल से मुक्ति, (३) १ अप्रैल को सरकारी शासन-विधान के विरोध में हड़ताल, (४) अंडमान के २२५ क़ैदियों की भूख-हड़ताल के प्रति सहानुभूति प्रदर्शन करने के लिये १४ अगस्त को अंडमान-दिवस मनाना—ये मुख्य हैं ।

ऐसा ही विधान स्वीकार कर सकते हैं जो हमारी स्वाधीनता के आधार पर बना हो, और जनता द्वारा तैयार किया गया हो। उसी विधान में हमारी ऐसी असबली हो सकती है जिसमें विदेशी सत्ता के हस्तक्षेप होने की कोई सभावना न हो। सुभाष बाबू ने सर्वप्रथम कांग्रेस के मच से ट्रेड यूनियन और किसान सभा को स्वतंत्ररूप से संगठित कर मज़बूत बनाने के ऊपर ज़ोर दिया।

कांग्रेस मंत्रिमंडल ने क्या किया?

कांग्रेस की मिनिस्ट्री २ वर्ष से कुछ अधिक समय तक रही। इस बीच में उसके कार्यों की काफ़ी नुक्ताचीनी की गई। दरअसल यह मिनिस्ट्री असली अर्थ में मिनिस्ट्री नहीं थी। अगस्त १९३८ के हरिजन में गांधीजी ने मंत्री-मंडल की सीमायें बताते हुए लिखा था कि जहां तक वास्तविक सत्ताका संबंध है, मंत्रिमंडल एक कठपुतली के सिवाय और कुछ नहीं, तथा कलक्टर और पुलिस जब चाहें उसे पकड़ कर क़ैद कर सकते हैं।

वास्तव में देखा जाय तो ये लोग क़ानून बनानेवाले साम्राज्यवादियों की इच्छानुसार क़ानून का प्रयोग कर रहे थे, और इसलिये नौकरशाही अपनी 'सफलता' पर ख़ुश थी। इसमें शक नहीं कि मंत्रिमंडलने सिविल लिबर्टी, ज़मीन, तथा समाज, शिक्षा और स्वास्थ्यसंबंधी कुछ सुधार किये लेकिन इस में साम्राज्यवाद की जड़ पर कोई कुठाराघात न हुआ जिससे जनता की ग़रीबी दूर हो सकती। भारत की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये अन्तिम संग्राम की तैयारी भी कांग्रेस मंत्रिमंडल न कर सका। उल्टे इन सुधारों की कीमत चुकाने के लिये मंत्रिमंडलों को जनता को ख़िलाफ़ जाकर साम्राज्यशाही का पाया मज़बूत करना पड़ा।

कांग्रेस की सब से बड़ी सफलता सिविल लिबर्टी के रूप में हुई, जिस के फल स्वरूप बहु-संख्यक राजनैतिक क़ैदी छोड़ दिये गये, जिन में १९२१ के मोपला विद्रोह के क़ैदी, १९२२ के चौरीचौरा के क़ैदी,

चन्द्रसिंह के अतिरिक्त पेशावर के अन्य गढ़वाली सिपाही, और मेरठ षड्यन्त्र के क़ैदी भी थे। राजनैतिक पार्टियों के ऊपर से प्रतिबंध हटा लिये गये, अख़बारों की जमानतें लौटा दी गईं, और 'काली फ़हरिस्तें' रद्द कर दी गईं। यह सब होते हुए भी कांग्रेस मंत्रिमंडल नौकरशाही का एक प्रकार का हथियार हो गया था। उदाहरण के लिये मद्रास सरकार ने राजद्रोह के अपराध में समाजवादी नेता श्री सोली बाटलीवाला को छह महीने की सज़ा दी; कुछ स्थानों पर ताजीरात हिन्द की १२४ ए और १४४ धारायें लगा दी गईं, तथा 'हिंसा' का प्रचार करने वालों को सज़ायें दी गईं।

सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में भी कांग्रेस मंत्रिमंडल विशेष कुछ न कर पाया। मौजूदा ज़मीन आदि के क़ायदे-क़ानूनों में कोई विशेष परिवर्तन न हो सका। यद्यपि किसानों के पुराने क़र्ज़ का कुछ हिस्सा रद्द कर दिया गया, ब्याज की दर कम कर दी गई, बेदख़ली के ख़िलाफ़ क़ानून बना दिये गये, और कहीं-कहीं लगान भी माफ़ कर दिया गया। लेकिन इससे किसानों को जितनी चाहिये उतनी राहत न मिली। इतना ही नहीं, बिहार, उड़ीसा और संयुक्तप्रान्त के किसानों में असन्तोष होने के कारण आन्दोलन चल पड़ा, और बिहार में जो मंत्रिमंडल और ज़मींदारों का समझौता हुआ था उसका विरोध किया गया।

मज़दूरों की तनख़्वाह बढ़ाकर और ट्रेड यूनियन के संगठन आदि द्वारा कांग्रेस मंत्रिमंडल ने मज़दूरों की प्रगति को आगे बढ़ाया, लेकिन सरकार को मज़दूरों के ख़िलाफ़ भी जाना पड़ा। मद्रास सरकार ने मज़दूरों की लड़ाई में हस्तक्षेप किया, शोलापुर में मिल मज़दूरों का दमन करने के लिये १४४ धारा लगा दी गई, और बंबई में इन्डस्ट्रियल डिस्प्यूट बिल को पास कराकर मज़दूरों के हड़ताल करने के अधिकार को काफ़ी सीमित कर दिया। इस बिल के ख़िलाफ़ ७ नवंबर को प्रोविंशियल ट्रेड यूनियन कांग्रेस की ओर से जब हड़ताल की गई तो सरकार ने मज़दूरों पर गोली

चलवायी। अहिंसा का वातावरण सुरक्षित रखने के लिये प्रजा के विरुद्ध कम से कम हिंसा करने की छूट दे दी गई।

सामाजिक सुधारों में कांग्रेस सरकार ने विशेषकर शराबबन्दी और मादक द्रव्यों पर रोक लगाई। शिक्षासंबंधी योजनाओं को कार्यान्वित करने की चेष्टा की गई, परन्तु द्रव्य के अभाव के कारण कुछ न किया जा सका, जिसकी पूर्ण सत्ता ब्रिटिश सरकार के हाथों में थी।

राइटविंग का सरकार से समझौता करने का खबरें

लोग धीरे-धीरे महसूस करने लगे थे कि इस प्रकार कांग्रेस सरकार के ज़रिये देश की स्वतंत्रता का आन्दोलन आगे नहीं बढ़ सकता। लेकिन कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार ब्रिटिश सरकार से समझौते का कोई मार्ग नहीं रह गया था। फिर भी शायद सरकार समझती थी कि कांग्रेस किसी न किसी रूप में संघ-शासन को स्वीकार कर लेगी। इस समय ब्रिटिश सरकार के कुछ खास प्रतिनिधि और कांग्रेस के नेताओं की कई बार चर्चा हुई, और बहुत सी अफ़वाहें आईं की समझौता हुआ चाहता है। इसके सिवाय, सुभाष के अनुसार, राइटविंग के लीडरों ने व्यक्तिगत रूप में इस समय कुछ बयान प्रकाशित किये जिससे मालूम होता था कि वे परिवर्तित संघ-शासन के आधार पर समझौता करने को तैयार हैं।

[१५]

महायुद्ध और मंत्रिमंडल का स्तीफ़ा (१९३९)

त्रिपुरी-कांग्रेस

मार्च १९३९ में त्रिपुरी में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन होने जा रहा था। उसके अध्यक्ष के लिये तीन नाम पेश हुए—मौलाना अबुलकलाम आज़ाद, डॉ. पट्टाभि सीतारामैय्या और सुभाषचन्द्र बोस। इनमें मौलाना आज़ाद ने अस्वस्थता के कारण अपना नाम वापस ले लिया, और उन्होंने डॉ. सीतारामैय्या को वोट देने को कहा। इस समय सुभाष बाबू ने बयान देते हुए कहा कि "किसी निश्चित कार्यक्रम के बल पर फ़ैडरेशन के ख़िलाफ़ चुनाव लड़ा जाना चाहिये। तथा मौलाना आज़ाद के अनुसार यदि बहु-संख्यक डेलीगेट मुझे अपना नाम वापिस लेने को कहें तो मैं नाम वापिस ले सकता हूं।"

उधर सरदार पटेल, बाबू राजेन्द्रप्रसाद आदि कांग्रेस कार्यकारिणी के छह प्रमुख नेताओं ने एक बयान देते हुए डॉ. सीतारामैय्या को वोट देने का अनुरोध किया। स्वयं डॉ. सीतारामैय्या ने अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए बताया कि मैं गांधीजी का भक्त हूँ, तथा कांग्रेस में जो अनुशासन-भंग आदि दोष आ गये हैं, उन्हें दूर करने को मैं कोशिश करूंगा।

इस समय बोस ने अपने बयान में बताया कि राइटविंग के नेता फ़ैडरेशन योजना को लेकर सरकार से समझौता करना चाहते हैं।

अतएव ऐसे मौके पर यदि लेफ्टविंग के अन्य किसी व्यक्ति को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया जाय तो मैं अपना नाम वापिस लेने को तैयार हूं। उन्होंने इस पद के लिये आचार्य नरेन्द्रदेव का नाम भी सुझाया। अस्तु, दोनों ओर से चुनाव लड़ा गया। डॉ. सीतारामैय्या के पक्ष में थे गांधीजी और कांग्रेस कार्यकारिणी के वयोवृद्ध नेता, तथा सुभाष के पक्ष में थे कांग्रेस के लेफ्टिस्ट, सोशलिस्ट तथा कम्युनिस्ट। सुभाष को १५८० और डॉ. सीतारामैय्या को १३७७ वोट मिले।

तुरंत ही सुभाष बाबू ने एक बयान निकाला कि "यह समय विजय की खुशी मनाने का नहीं। कुछ लोग शायद समझते हों कि कांग्रेस में फूट हो गई है, मगर यह बात नहीं, हम लोग सब एक हैं और एक होकर काम करेंगे।" गांधीजी के विषय में उन्होंने कहा कि यदि मैं देश के सब से महान् पुरुष का विश्वास न प्राप्त कर सका तो मेरे लिये यह बहुत दुखदायी बात होगी। लेकिन गांधीजी ने कहा कि सुभाष के दुबारा चुने जाने के मैं पहले से ही खिलाफ़ था, इसीलिये मैंने डॉ. सीतारामैय्या को उनका नाम वापिस नही लेने दिया। अतएव इस में डॉ. सीतारामैय्या की नहीं बल्कि अपनी हार समझता हूँ। राइटविंग के नेताओं से गांधीजी ने कहा कि उन्हें कांग्रेस से बाहर निकल आना चाहिये।

अस्तु, १५ फ़र्वरी को सुभाष गांधीजी से मिलने वर्धा गये और वहाँ कई घंटे विचार-विनिमय किया। गांधीजी ने कहा कि उनके साथी नई कमेटी बनाने में कोई सहयोग न देंगे, और न राइटविंग के कार्यकारिणी के सदस्य कांग्रेस की नीति निर्धारित करने में इस समय कोई हिस्सा लेंगे। इसके बाद कांग्रेस कार्यकारिणी के १५ में से १२ सदस्यों ने स्तीफ़ा दे दिया और कांग्रेस का कार्य-संचालन सुभाष के ऊपर छोड़ दिया। पं. जवाहरलाल नेहरू ने भी कार्यकारिणी से स्तीफ़ा दे दिया और २२ फ़र्वरी को वर्धा से एक वक्तव्य निकाला।

त्रिपुरी-कांग्रेस के कुछ ही सप्ताह बाक़ी रह गये थे। लेकिन इस समय सुभाष बाबू बहुत सख़्त बीमार थे। ज़रा तबियत सुधरने पर उन्होंने कार्य-कारिणी के सदस्यों के स्तीफ़े स्वीकार कर लिये। अधिवेशन के दिन आ गये थे और उधर सुभाष बाबू कोई भी कार्य करने में असमर्थ थे।

ख़ैर, सुभाष बाबू हिम्मत कर ६ मार्च को एम्बुलैंस में लेटकर त्रिपुरी पहुँचे। कांग्रेस कमेटी की बैठक में सुभाष स्ट्रेचर पर लाये गये। श्री गोविन्द-वल्लभ पन्त ने प्रस्ताव पेश किया कि यह समिति महात्मा गांधी के नेतृत्व में दृढ़ विश्वास रखती है, तथा इस समिति पर जो दोषआरोपण किये गये हैं उसके लिये दुख प्रकट करती है। साथ ही अध्यक्ष महोदय से प्रार्थना करती है कि गांधीजी की इच्छानुसार ही नई कमेटी बनाई जाय। कहना न होगा कि इस प्रस्ताव पर बड़ी गरमागरम बहस हुई, जिस में श्री अणे, सरदार शार्दूल सिंह कविशर, और श्री नरीमैन ने सुभाष के पक्ष का ज़ोरदार समर्थन किया। इस पर श्री एम. एन. राय तथा श्री जयप्रकाश नारायण ने संशोधन पेश किये, मगर संशोधन पास न हो सके और श्री पन्त का प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया।

इसके बाद १० मार्च को खुला अधिवेशन हुआ और उसमें भी गांधी जी के अनुयायियों की जीत हुई। लोगों का ख़याल था कि सुभाष बाबू अब अध्यक्ष पद से स्तीफ़ा दे देंगे लेकिन ऐसा न हुआ। उन्होंने सोचा कि उक्त प्रस्ताव के मुताबिक़ वे गांधीजी से मिलकर नई कमेटी बनाने की चर्चा करेंगे, लेकिन सुभाष का स्वास्थ्य ठीक न हुआ। उधर गांधी जी सुभाष बाबू के सहयोग से कोई कमेटी बनाने को तैयार न थे। आख़िर २८ अप्रैल को कलकत्ते में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक बुलाई गई। सुभाष बाबू ने देखा कि समझौता होना असंभव है, अतएव उन्होंने अध्यक्षपद से स्तीफ़ा दे दिया। राजेन्द्र बाबू को कांग्रेस का नया अध्यक्ष चुना गया, और फिर से गांधीवादी कमेटी सत्ता में आ गई।

फ़ारवर्ड ब्लॉक की स्थापन

लेकिन सुभाष बाबू चुप बैठने वाले कहाँ थे ? उन्होंने मई महीने में फ़ारवर्ड ब्लॉक नामकी एक अलग पार्टी क़ायम की। इसका उद्देश्य कांग्रेस के विधान आदि का विरोध न कर कांग्रेस के मौजूदा नेतृत्व के प्रति असंतोष व्यक्त करते हुए, कांग्रेस के प्रगतिशील वर्ग को साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ तैयार करना था ताकि फ़ैडरेशन की योजना हिन्दुस्तानियों के सिर पर न लादी जा सके। फ़ारवर्ड ब्लॉक चाहता था कि (१) कांग्रेस का मंत्रिमंडल प्रान्तीय तथा अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी के मातहत रहते हुए कार्य करे, (२) मज़दूर, किसान तथा भारत की रियासतों के संगठन के साथ कांग्रेस अपना सीधा और नज़दीकी संबध स्थापित करे, (३) स्थायी स्वयंसेवक दल बनाये जाँय और (४) फ़ैडरेशन की योजना के विरुद्ध राष्ट्रीय संग्राम को मज़बूत किया जाय। स्वास्थ्य सुधरने पर सुभाष बाबूने देशभर का दौरा किया और जगह–जगह पार्टी की शाखायें खोलीं।

इस मौके पर कांग्रेस की ओर से दो प्रस्ताव रक्खे गयेः– एक तो प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की अनुमति के बिना सत्याग्रह की मनाई और दूसरा प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी और कांग्रेस मंत्रिमंडल के विषय में। सुभाष बाबू ने इनकेविरोध में ८ जौलाई को एक प्रदर्शन किया, जिस में फ़ारवर्ड ब्लॉक, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट, ट्रेड्यूनियन और किसान सभा के लोग शरीक हुए। इस पर कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने उनके ख़िलाफ़ अनुशासन–भंग की कारवाई कर उन्हें तीन साल तक बंगाल कांग्रेस कमेटी का सभापति होने की निषेधाज्ञा निकाल दी।

मंत्रिमंडल के स्तीफ़े

३ सितंबर १९३९ को योरोप में द्वितीय महायुद्ध छिड़ते ही भारत की व्यवस्थापक सभाओं या प्रतिनिधियों की अनुमति के बिना भारत को युद्ध में शरीक कर लिया गया। ब्रिटिश पार्लियामेंन्ट ने ११ मिनिट के अन्दर गवर्नमेन्ट

आफ़ इन्डिया एमेन्डिंग एक्ट पास कर दिया। वाइसराय को विशेष अधिकार सौंप दिये गये। ३ सितंबर को डिफेन्स ऑफ़ इन्डिया आर्डिनेंस जारी कर दिया गया कि सरकार के संरक्षण के लिये, प्रजामें शांति और व्यवस्था क़ायम रखने के लिये, तथा युद्ध का सुचारु रूप से संचालन करने के लिये केन्द्रीय सरकार को सत्ता दी जाती है कि वह आवश्यक क़ायदे-क़ानून जारी करके सभाओं आदि पर रोक लगा सकती है, बिना वारंट के लोगों को गिरफ्तार कर सकती है, तथा क़ायदे भंग करनेवालों को आजन्म कारावास या मृत्युदण्ड तक दिया जा सकता है। तत्पश्चात् ११ सितंबर को वाइसराय की ओर से सम्राट् का भारत के प्रति सन्देश सुनाया गया कि इस युद्ध में हिन्दुस्तानियों की सहानुभूति और मदद की अपेक्षा की जाती है। इसी के साथ वाइसराय ने विधान की तैयारियाँ मुल्तवी करने की घोषणा कर दी, और विशेष अधिकार-प्राप्त एक निरंकुश सरकार क़ायम कर दी गई।

हिन्दुस्तान को उसकी इच्छा के विरुद्ध लड़ाई में शामिल करने का विरोध करते हुए कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने १४ सितंबर को ब्रिटिश सरकार की नीति से अपना मतभेद व्यक्त करते हुए अपने मन्त्रिमण्डलों को भिन्न-भिन्न प्रान्तों में स्तीफ़े दे देने को कहा। साथ ही ब्रिटिश सरकार की कड़ीआलोचना करते हुए कहा गया कि "ब्रिटेन की ओर से यह कहा जाता रहा है कि अत्याचारियों के दमन करने के लिये, स्वाधीनता और लोकतन्त्रवाद की रक्षा के लिये युद्ध लड़ा जा रहा है। ऐसी हालत में यदि ब्रिटेन का यह मंतव्य सही है तो युद्ध के बाद भारत की स्वतंत्रता की घोषणा अभी से कर देनी चाहिये। साथ ही विधान-परिषद् द्वारा अपने देश के विधान बनाने का कार्य हिन्दुस्तानियों को बग़ैर किसी बाहरी हस्तक्षेप के, करने का हक़ सौंप दिया जाना चाहिये।" लेकिन इन बातों का कोई असर न हुआ।

[१६]

सुभाष का अन्तिम प्रयत्न (१९४२-६)

गांधीजी की अहिंसा

रामगढ़ में १९-२० मार्च १९४० को मौलाना अबुलकलाम आज़ाद की अध्यक्षता में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। इसमें हिन्दुस्तान और युद्ध की नीति के विषय में कांग्रेस का पुराना प्रस्ताव दुहराया गया। गांधीजी ने सत्य, अहिंसा और चरखे पर ज़ोर देते हुए और ब्रिटेन की लड़ाई को न्याय्य लड़ाई बताते हुए कहा कि जब अंग्रेज़ लोग जीवन-मरण के युद्ध में संलग्न हैं, उन्हें कष्ट पहुँचाना ठीक नहीं। गांधीजी का मानना था कि सत्याग्रही को बिना किसी द्वेषभाव के अहिंसा से युद्ध करना चाहिये, भले ही उसे जीवन से क्यों न हाथ धोना पड़े। उनका यह भी कहना था कि यदि अहिंसा को त्याग करके स्वाधीनता आती है तो वह ग्रहण करने योग्य नहीं। लेकिन राष्ट्र ऐसे खतरे के समय अहिंसा के नाम पर इतनी दूर जाने को तैयार न था। कांग्रेस के अन्य नेता चाहते थे कि सरकार यदि कांग्रेस की माँग स्वीकार कर ले तो वे युद्ध में ब्रिटिश का सहयोग दे सकते हैं। लेकिन जब ब्रिटिश सरकार की ओर से कोई संतोषजनक उत्तर न मिला तो गांधीजी को व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाने के लिये बाध्य होना पड़ा।

सुभाष बाबू अचानक लापता

जिन दिनों रामगढ़ में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था, उन्हीं दिनों वहाँ सुभाष बाबू की अध्यक्षता में समझौता-विरोधी (ऑल इन्डिया एन्टी-कम्प्रोमाइज़) परिषद् हुई, जिस में सुभाष बाबू और स्वामी सहजान्द सरस्वत को कहा गया कि हिन्दुस्तान में आन्दोलन चलाने के लिये वे एक कमेटी नियुक्त करें। इसके बाद १८ जून को नागपुर में सुभाष बाबू की अध्यक्षता में फ़ारवर्ड ब्लॉक का दूसरा अधिवेशन हुआ, जिस में सब से महत्त्वपूर्ण कार्य यह हुआ कि फ़ारवर्ड ब्लॉक को एक समाजवादी संस्था बना दिया गया। इस समय देश में परस्पर शांति क़ायम रखने के लिये नागरिकों के संरक्षण-दल बनाने पर ज़ोर देते हुए तात्कालिक राष्ट्रीय सरकार की माँग की गयी।

इसके बाद सुभाष बाबू ने कलकत्ता के होलवैल स्मारक को हटाने के लिये आन्दोलन चलाया। ३ जौलाई १९४० को स्वयंसेवकों का पहला जत्था रवाना हुआ। सरकार ने सुभाष को पकड़ कर जेल में नज़रबन्द कर दिया। इसी वक़्त सरकार सुभाष के ऊपर दो केस और चलाना चाहती थी, एक कलकत्ते में मुहम्मद अली पार्क में भाषण देने के संबंध में और दूसरा 'फ़ारवर्ड ब्लॉक' नामक पत्र में लिखे 'डे ऑफ़ रेकनिंग' नामक उनके लेख के संबंध में।

अस्तु, सुभाष बाबू ने २९ नवंबर को जेल में भूख हड़ताल शुरू कर दी, और सरकार से कहा कि या तो उन्हें छोड़ दिया जाय, नहीं तो उन्हें अपने जीवन का सूत्र तोड़ने में देर न लगेगी। कहना न होगा सरकार ने घबरा कर उन्हें शीघ्र ही छोड़ दिया।

अब सुभाष घर में नज़रबन्द करके रख दिये गये। वे गीता आदि धार्मिक पुस्तकें पढ़ते हुए ध्यान में अपना समय बिताने लगे। एक दिन

यकायक २६ जनवरी को मालूम हुआ कि सुभाष परदे के अन्दर ही अन्दर कहीं ग़ायब हो गये। पुलिसने बहुत छान-बीन की, जगह-जगह तार दिये, मगर कहीं कुछ पता न चला। किसीने कहा सुभाष हिमालय चले गये हैं और किसी ने कहा उन्होंने संन्यास ले लिया है। स्टेट्समैन आदि अर्ध-योरोपियन अखबारों ने लिखा कि वे जर्मन-जापानियों के हाथ में पहुँच गये हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति दिन पर दिन गंभीर होती जा रही थी। जून १९४१ में जर्मनी ने रूस पर हमला कर दिया। ब्रिटेन में आन्दोलन हो रहा था कि भारत की मांगे पूरी करके वहां राष्ट्रीय सरकार की स्थापना होनी चाहिये। इसके फलस्वरूप भारत सरकार ने सत्याग्रह के कैदियों को छोड़ दिया और कांग्रेस ने भी व्यक्तिगत सत्याग्रह बन्द कर दिया। लेकिन इसके आगे कुछ न हुआ। उधर ब्रिटिश सरकार की सम्मति से अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने युद्ध के उद्देश्यों के संबंध में 'अटलांटिक चार्टर' की घोषणा की, लेकिन इसमें भारत की स्वतंत्रता का कोई जिक्र न था। इस विषय में चर्चिल ने स्पष्ट कह दिया कि यह चार्टर केवल योरपीय देशों की स्वतंत्रता के लिये है।

अस्तु। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति दिन पर दिन जटिल हो रही थी। जापान ने बिना किसी सूचना के दिसंबर १९४१ में अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी, और पर्ल बन्दरगाह पर हमला कर दिया; तथा थाइलैण्ड, इंडोचाइना को पार करता हुआ मलाया में घुस कर वह बरमा में आ गया। सिंगापुर के पतन से स्थिति बड़ी विकट हो गई। हिन्दुस्तान में राष्ट्रीय सरकार की माँग की गई, लेकिन सरकारने फिर भी कुछ ध्यान नहीं दिया। १९४२ के प्रारंभ में स्थिति बड़ी निराशाजनक हो रही थी। इस समय चीन के प्रधान सेनापति मार्शल च्यांगकाईशेक

भारत में आये, और वे भारत के अनेक नेताओं से मिले। उन्होंने ब्रिटिश सरकार से अपील की कि वह भारत के मामले में उदारता से काम ले। अन्त में ब्रिटिश सरकार ने बर्मा के अनुभवों से परिस्थिति की गभीरता को समझ कर युद्ध के बाद भारत की पूर्ण राजनैतिक स्वतंत्रता को स्वीकार करते हुए एक घोषणा की। फलतः अप्रैल १९४२ में सर स्टैफर्ड क्रिप्स हिन्दुस्तान भेजे गये। दो हफ़्ते तक समझौते की बातचीत चलती रही, लेकिन युद्धकाल में स्वतंत्र राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की मांग मंजूर न होने के कारण समझौतेकी बात टूट गई। तत्पश्चात् नौ अगस्त को बम्बई कांग्रेस में 'क्विट इन्डिया' का प्रस्ताव पास हुआ, और इस प्रस्ताव के पास होते ही सरकार ने कांग्रेस के नेताओं को पकड़कर जेल में डाल दिया। बस तमाम देश में दमनचक्र शुरू हो गया।

सुभाष बाबू जर्मनी में

कुछ समय बाद पता चला कि सुभाष बाबू पुलिस के कड़े पहरे से निकलकर एक पठान के वेश में काबुल होते हुए जर्मनी पहुँच गये हैं। सुभाष बाबू अक्सर रेडियो पर भाषण करते थे। कुछ दिनों बाद खबर मिली कि २८ मार्च १९४२ के दिन सुभाष बोस हवाई दुर्घटना से मर गये हैं। लेकिन यह समाचार ग़लत साबित हुआ।

२० जून, ४३ को मुस्लिम युवक श्री हसन के साथ एक पनडुब्बे में बैठ कर वे टोकियो पहुंचे। उसके बाद २ जौलाई १९४३ को सुभाष बाबू ने सिंगापुर आकर आज़ाद हिन्द फ़ौज को संगठित किया। आज़ाद हिन्द सरकार सुभाष बाबू के नेतृत्व में काम करने लगी और अब सुभाष बाबू 'नेताजी' कहे जाने लगे। यहां नेताजी ने अनेक भाषण दिये और बताया कि चाहे कुछ भी हो हम हिन्दुस्तान को आज़ादी के सिंहासन पर बैठा कर ही दम लेंगे। नेताजी ने अपनी फ़ौज में स्त्रियों का अलग संगठन किया

और इस विभाग का नाम 'रानी लक्ष्मी रेजीमेंट' रक्खा। अंडमान और निकोबार के स्वतंत्र प्रदेश में आज़ाद हिन्द का शासन क़ायम हो गया और ३० दिसंबर १९४३ को पोर्ट ब्लेयर पर तिरंगा झंडा फहराने लगा। बरमा में सदर मुक़ाम क़ायम होकर ४ फ़रवरी १९४४ को युद्ध का श्रीगणेश हो गया। २१ मार्च को आज़ाद हिन्द फ़ौज ने भारतभूमि में प्रवेश कर उसे नमस्कार किया।

आज़ाद हिन्द फ़ौज की ओर से एक नेशनल बैंक भी क़ायम कर लिया गया, और आज़ाद भारत का सिक्का चलने लगा। मोर्चे पर कूच करने के लिये गांधी ब्रिगेड, आज़ाद ब्रिगेड, नेहरू ब्रिगेड, सुभाष ब्रिगेड, झांसी रानी रेजीमेंट और जांबाज़ बालसेना नामक पलटनें क़ायम की गईं। २१ मई तक इम्फाल को घेर लिया गया था। सुभाष बाबू अपनी सेना के साथ मोर्चे पर पहुँचे, और मई—जून उन्होंने मोर्चे पर ही बिताये।

इस बीच में नेताजी की हत्या के लिये अनेक षड्यंत्र रचे गये लेकिन वे बाल—बाल बचते रहे।

वर्षा के कारण २१ अगस्त को सिपहसालार नेताजी ने सैनिक चढ़ाई स्थगित रखने का आदेश जारी किया और नये हमले की तैयारी करने का सब को हुकुम दिया। इस निमित्त से सितंबर के पहले सप्ताह में बरमा के हिन्दुस्तानी आज़ाद संघ की ओर से एक बृहत्सम्मेलन का आयोजन किया गया। लेकिन उधर प्रशान्त महासागर में जनरल मैकआर्थर की सेनाओं ने बड़े वेग से आगे बढ़ना शुरू किया, जिसके फलस्वरूप इम्फाल आदि जापानियों के हाथ से निकल गये। २६ जनवरी ४५ को अंग्रेज़ी सेनायें अकयाब पहुँच गईं। ५ मार्च को मिकतिल जापानियों से छिन गया, और रंगून पर आक्रमण शुरू हो गया। १५ मार्च को माण्डले और मेमयो भी जापानियों के हाथ से निकल गये। जापानी सेना रंगून ख़ाली करके २३ अप्रैल को बैंगकौक चली गई। नेता जी को भी लाचार

हो कर वहाँ जाना पड़ा। अन्त में २ मई को पेगू और ४ मई को रंगून का भी पतन हो गया और आज़ाद हिन्द फ़ौजने आत्म-समर्पण कर दिया।

कहते हैं १८ अगस्त को बैंगकौक से नेताजी टोकियो के लिये प्रस्थान कर रहे थे कि फ़ोरमासा के पास हवाई दुर्घटना में घायल हो जाने से उन की मृत्यु हो गई। कह नहीं सकते यह समाचार कहाँ तक सत्य है। कुछ लोगों का कहना है कि नेताजी अभी जीवित हैं, जिसका प्रमाण है उनका २५ जून १९४५ के दिन सिनोन से किया हुआ निम्नलिखित ब्रॉडकास्ट—

"मुझे विश्वास है कि यदि हमने अपना संग्राम जारी रक्खा तो इस युद्ध के आखिर तक हम अवश्य ही अपनी खोई हुई स्वतंत्रता प्राप्त कर लेंगे। लेकिन यदि किसी कारण से ऐसा न हो सका तो फिर हमारी दूसरी योजना होगी युद्ध के बाद भारत में क्रांति मचाना। इसमें सन्देह नहीं कि यदि अन्य दलित देश इस युद्ध के बाद अपनी स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सके तो इस युद्ध के समाप्त होने के ज़्यादा से ज़्यादा १० बरस के बाद तीसरा युद्ध अवश्यंभावी है। भारत की स्वाधीनता निश्चित है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।"

[१७]

उपसंहार

सुभाषचन्द्र बोस के अध्ययन से पता लगता है कि उनके जीवन में आरंभ से ही बड़ी ज़बर्दस्त कशमकश रही है। जितने समय ब्रिटिश सरकारने उन्हें हिन्दुस्तान में स्वतंत्र रूप से रहने दिया, वे हमेशा किसी न किसी कार्य में व्यस्त रहे। उनके जीवन का एक ही उद्देश्य, और उनकी प्रवृत्तियों का एक ही केन्द्र है कि भारत को किसी तरह ब्रिटेन की साम्राज्य-शाही के चंगुल से छुटकारा मिले। अपने इस लक्ष्य की सिद्धि के लिये उन्होंने कितनी बार अपने प्राणों की बाज़ी लगाई, कितनी बार अपनी जान को हथेली में रखकर उन्हें जूझना पड़ा, और कितनी बार उन्होंने अपने मान-अपमान की परवा न कर अपने विरोधियों से लोहा लिया। सचमुच अपने स्वार्थ-त्याग और स्वदेश-प्रेम के कारण जितनी ख्याति अपने देशवासियों द्वारा सुभाष बाबू को मिली उतनी शायद अन्य किसी नेता को न मिल सकी।

सुभाषचन्द्र इंगलैंड जाकर इस शर्त पर इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठने के लिये राज़ी हुए थे कि वे सरकारी नौकरी न करेंगे। सन् १९२१ में असहयोग आन्दोलन छिड़ते ही वे लन्दन से रवाना हो गये और बंबई पहुंचकर गांधीजी से मिले। लेकिन सुभाष बाबू को यह समझने में देर न

लगी कि इस प्रकार के आन्दोलनों द्वारा देश को राजनैतिक आज़ादी नहीं मिल सकती ।

गांधीजी ने असहयोग या सत्याग्रह द्वारा देश को नया मार्ग प्रदर्शन किया था, लेकिन उन्होंने समाज की पुनर्रचना का कोई रास्ता नहीं बताया था । इसका अर्थ यह हुआ कि स्वराज मिलने के बाद भी गांधीजी के अनुसार समाज-रचना में कोई फ़र्क़ न होगा, सिर्फ़ उसमें यह ध्यान रक्खा जायगा कि नीतिशास्त्र के विरुद्ध समाज में जो विषमता और अन्याय आदि दोष दिखाई पड़ते हैं, उन्हें हटाने का प्रयत्न किया जाय । इसके अतिरिक्त, गांधीजी को अंग्रेज़ों की न्यायपरायणता और 'समझौते की नीति में सदा विश्वास रहा है, इससे राष्ट्रीय संग्राम जितनी ज़ोर से चलना चाहिये उतनी ज़ोर से न चल सका ।

इसके विपरीत सुभाष बाबू कट्टर समाजवादी थे । उन्होंने साम्यवाद संघ नामक एक संस्था स्थापित करने का विचार किया था, जिसकी विशाल योजना उन्होंने बनाई थी । यह संस्था पूर्णरूप से पूँजीवाद तथा साम्राज्यवाद की विरोधी थी । सुभाष का मानना था कि जबतक समाजवाद में राष्ट्रीय हितों के लिये अत्यंत सक्रियरूप से कार्य करने की क्षमता नहीं आती, तबतक केवल सिद्धांतों से कुछ नहीं हो सकता । दरअसल तीन साल के बरमा-निर्वासन ने सुभाष बाबू के विचारों में अद्भुत क्रांति पैदा कर दी थी और उन्हें यह निश्चय हो गया था कि मज़दूर, किसान, नौजवान और स्त्रियों के संगठन के बिना देश की प्रगति नहीं हो सकती । सुभाष बाबू की तीव्र इच्छा थी कि कांग्रेस इस कार्य को हाथ में ले ।

ब्रिटिश साम्राज्यशाही से समझौता करने का प्रश्न तो कभी उनके सामने उठा ही नहीं । उनका कहना था कि "भारत का कोई भी बलिदान ब्रिटेन का हृदय नहीं बदल सकता, और न भारतवासियों के मूक बलिदानों का नौकरशाही पर कभी कोई प्रभाव पड़ सकता है ।" यही कारण है कि

जब जब ब्रिटिश नौकरशाही का विरोध करने का प्रसंग आया, उसमें वे जी-जान से जुट गये। सुभाष बाबू जानते थे कि गांधीजी की भद्रता की नीति मे ब्रिटेन ने ख़ूब लाभ उठाया है। इसीलिये उन्होंने गांधी-इरविन समझौते का काफ़ी विरोध किया और इस संबंध में नौजवान सभा द्वारा प्रस्ताव पास कराया।

कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि बन कर गांधीजी के गोलमेज परिषद् में शरीक होने के भी सुभाष बाबू बहुत विरुद्ध थे। वे नहीं चाहते थे कि गांधीजी ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग करने की बात को परिषद् में बार बार दुहराकर अपनी कमज़ोरी का प्रदर्शन करें। इस प्रसंग पर सुभाष ने लिखा है "ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की कुशलता के सामने गांधीजी को सचाई और स्पष्टवादिता न टिक सकी और उन्हें लन्दन से निराश होकर लौटना पड़ा। लेकिन गांधीजी की 'हृदय-परिवर्तन' की नीति में कोई परिवर्तन न हुआ। लिहाज़ा उन्होंने हिन्दुस्तान पहुँच कर वाइसराय को पत्र लिखकर फिर न्याय की भीख माँगी।"

दुर्भाग्य मे सुभाष बाबू को ब्रिटिश सरकार की जेलों के बाहर बहुत कम रहने का अवसर मिला। इतने पर भी जब जब मौक़ा आया उन्होंने गांधी जी के सुधारवादी विचारों की सख़्त आलोचना की। यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा की सुभाष बाबू गांधीजी के व्यक्तित्व से अत्यंत प्रभावित थे, और वे उन्हें अत्यंत आदर की दृष्टि से देखते थे।

सन् १९३७ में जब सुभाष बाबू योरोप से लौट कर आये तो उस समय योरोप में युद्ध की ज्वालायें उठ रही थीं। हरिपुरा-अधिवेशन में सभापति के आसन से बोलते हुए सुभाष बाबू ने सरकारी विधान की निन्दा की। दरअसल सुभाष बाबू भली प्रकार समझते थे कि योरोप में युद्ध अवश्यंभावी है, फिर क्यों न भारत के लोग ऐसे समय ब्रिटेन को अपनी माँगें पूरी करने के लिये मजबूर करें।

इसी समय फिर से सुभाष बाबू को त्रिपुरी–कांग्रेस का सभापति चुनकर जनता ने उनके नेतृत्व में अपना विश्वास प्रकट किया। सुभाषचन्द्र ने ६ महीने के अन्दर–अन्दर पूर्ण स्वतंत्रता हासिल करने का प्रस्ताव रक्खा, और कहा कि इस बात की अन्तिम सूचना सरकार को दी जाय कि यदि इस अवधि के अन्दर ब्रिटेन भारत की माँग पूरी न करेगा तो भारत अपनी पूरी ताक़त लगा कर ब्रिटेन से लड़ेगा। लेकिन कांग्रेस के अन्य नेता और किसी ध्यान में थे। उनका ख़याल था कि युद्ध काल में ब्रिटेन कमज़ोर पड़ कर भारत से सहायता पाने के लिये उससे समझौता कर लेगा। परन्तु सुभाष ने कहा कि ब्रिटेन ज्यों–ज्यों कमज़ोर होगा, वह हिन्दुस्तान को और ज़ोर से जकड़ता जायगा, क्योंकि उसकी सहायता के बिना वह युद्ध में कभी सफल नहीं हो सकता।

इस समय सुभाष के फिर से कांग्रेस के सभापति चुने जाने पर गांधी जी ने कांग्रेस–नेताओं को कांग्रेस से अलग हो जाने को कहा। फलतः कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्यों ने अपने–अपने स्तीफ़े पेश कर दिये।

सुभाष बाबू ने देश के महान और प्रिय नेता का विश्वास प्राप्त करने के लिये बहुत प्रयत्न किया, मगर सफलता न मिली। इस मौक़े पर उग्रवादी कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने भी सुभाष बाबू का साथ न दिया, जिससे उन्हें कांग्रेस के अध्यक्ष पद से स्तीफ़ा देने के लिये बाध्य होना पड़ा।

लेकिन इससे सुभाष बाबू का काम ख़तम नहीं हो गया। वे जो बरसों से ब्रिटिश साम्राज्यशाही के महल को ढा देने के स्वप्न देख रहे थे! उन्होंने फ़ौरन ही देश भर में भ्रमण किया और देश की परिस्थिति का पता लगा कर 'फ़ारवर्ड ब्लॉक' की स्थापना की। सुभाष बाबू का एक-मात्र उद्देश्य था कि इस संस्था द्वारा मज़दूर, किसान तथा देशी रियासतों को संगठित कर कांग्रेस की पुनर्रचना द्वारा ब्रिटेन के साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़

मोर्चा तैयार किया जाय, और वर्तमान महायुद्ध का पूरा-पूरा लाभ उठाया जाय। वे चाहते थे कि किसी भी तरह हो, ब्रिटन के इस संकट के समय आन्दोलन अवश्य छेड़ा जाय। लेकिन कांग्रेस हाईकमान्ड इसके लिये तैयार न था। उसने सुभाष के खिलाफ़ फ़ौरन अनुशासनभंग की कार्रवाई कर उन्हें कांग्रेस से अलग करना चाहा।

उधर युद्ध छिड़ते ही सरकार की ओर से वाइसराय को विशेष अधिकार सौंप दिये गये और 'डिफन्स ऑफ़ इन्डिया आर्डिनेन्स' घोषित कर निरंकुश सरकार बना दी गई। कांग्रेस ने हिन्दुस्तानियों की इच्छा के विरुद्ध उन्हें युद्ध में शामिल कर लेने की ब्रिटेन की नीति का सख़्त विरोध किया, लेकिन कोई नतीजा न हुआ। इस समय फिर गांधीजी ने ब्रिटन की लड़ाई को न्याय-संगत बताकर ब्रिटन के प्रति सद्भावना व्यक्त करते हुए कहा कि ब्रिटन के संकट से लाभ उठाना ठीक नहीं। गांधीजी ने यह भी बताया कि यदि हिंसा से स्वराज प्राप्त होता हो तो वह ग्राह्य नहीं है।

सुभाष बाबू के लिये यह समय अग्नि-परीक्षा का था। वे चाहते थे कि देश के नेताओंने जो गलती पहले महायुद्ध में की है, उसका पुनरावर्तन न किया जाय। उन्होंने तय किया कि युद्धकाल में सब कुछ उचित है, फिर क्यों न ऐसे समय ब्रिटेन के शत्रुओं के कंधे से कंधा मिलाकर युद्ध किया जाय; दुनिया के इतिहास में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मौजूद हैं।

बहुत ऊहापोह के पश्चात सुभाष बाबू ने निश्चय किया कि इस महान् कार्य के लिये किसी भारतीय को हिन्दुस्तान से बाहर विदेशों में जाकर ब्रिटेन के शत्रुओं से सहायता प्राप्त करनी चाहिये। उस समय सुभाष बाबू जेल में थे। उन्होंने आमरण अनशन करने का दृढ संकल्प किया। सुभाष का स्वास्थ्य ख़राब होने लगा, और इस पर सरकार ने उन्हें सातवें दिन जेल से रिहा कर उन्हें उनके घर में नज़रबन्द करके रख दिया। लेकिन सुभाष बाबू ने वहाँ से छिपकर पलायन करने की योजना बना ली।

परदे के भीतर से ग़ायब होकर एक दिन वे बर्लिन जा पहुँचे। उसके बाद उन्होंने सिंगापुर पहुँच कर आज़ाद हिन्द फ़ौज की स्थापना की।

सुभाष बाबू का दृढ़ विश्वास था कि जबतक अंग्रेज़ लोग भारत छोड़कर नहीं जाते, तबतक हमारे देशवासी कभी सुख की नींद नहीं सो सकते। जर्मनी और जापान जैसे फ़ासिस्ट देशों के साथ जाकर उनके मिलने का कारण भी उनकी ब्रिटिश साम्राज्य-विरोधी भावना ही थी—वे हिन्दुस्तान में फ़ासिस्टों की हकूमत कभी नहीं चाहते थे। २ अक्टूबर १९३९ को सुभाष बाबूने कहा था—

"मैं हिटलरशाही से नफ़रत करता हूं, चाहे वह भारत में कांग्रेस के अन्दर हो या योरोप में जर्मनी के अन्दर। साम्यवाद ही हिटलरशाही का एकमात्र प्रतिकार है।"

अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए आगे चलकर उन्होंने कहा है—"उस समय मेरे सामने तीन मार्ग थे-(१) युद्ध से अलग होकर तटस्थ स्थिति में रहना, (२) ब्रिटेन के पास जाकर स्वतंत्रता की भीख माँगना, या (३) ब्रिटेन के शत्रुओं के साथ मिलकर युद्ध करना और स्वतंत्रता प्राप्त करना। इन में ब्रिटिश साम्राज्य का नाश करने के लिये मैंने अन्तिम मार्ग ही श्रेयस्कर समझा।"

कहना न होगा कि इस महान् कार्य में भारत की जनता की भावना पूर्ण रूप से उनके साथ थी। यही कारण है कि भारत में जयहिन्द का नारा जितना लोकप्रिय हुआ है, उतना अन्य कोई नारा नहीं हुआ। पं. जवाहरलाल नेहरू ने मेजर जनरल शाहनवाज़ के मुक़दमे की पैरवी करते हुए कहा था कि "जिस काम को कांग्रेस ६० वर्ष में न कर सकी उससे बहुत ज़्यादा काम नेताजी ने ३ वर्ष के अन्दर कर दिखाया।"

जो कुछ भी हो, युद्ध समाप्त होने के बाद भी हिन्दुस्तान की समस्यायें ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। प्रजा में कंगाली और बेकारी बढ़ती जा रही है। रॉयल इन्डियन

नैवी की हड़ताल, मिल-मज़दूरों की हड़ताल, डाकियों की हड़ताल, दफ़्तर के क्लर्कों की हड़ताल आदि हड़तालें इस का प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह संघर्ष देशी रियासतों में भी पहुँच चुका है। साम्राज्यशाही के ख़िलाफ़ मोर्चा खड़ा करने का ऐसा स्वर्ण-अवसर शायद ही पहले कभी आया हो। इस समय आवश्यकता है जनता को मार्ग-प्रदर्शन करने की। इस कार्य को राष्ट्र की जनता की सब से बड़ी प्रतिनिधि कांग्रेस तथा अन्य राजनैतिक पार्टियाँ मिल कर ही कर सकती हैं। उसी समय राष्ट्र में नव-चेतना का निर्माण होगा और ब्रिटेन की सब योजनायें विफल हो जाँयगी।

भारत में शीघ्र ही अस्थायी सरकार बनने की तैयारियाँ हो रही हैं। जनता अपने प्रिय नेताओं की ओर बड़ी आशा से टकटकी लगाये देख रही है।